विद्वत्प्रकाण्ड श्रीमद्रत्नमण्डन गणि विरचितः

सुकृतसागरः ।

(संशोधितः पञ्चपरिशिष्टैः परिवर्द्धितश्च)

सम्पादकः संशोधकश्च

शासनसम्राट् पूज्याचार्य महाराज श्री विजय नेमि सूरीश्वर पट्टालङ्कार शास्त्रविशारदाचार्य महाराज श्री विजयामृतसूरीश्वर पट्टधर सौम्य स्वभावाचार्य श्री विजय देवसूरीश्वर शिष्यरत्नोपाध्याय श्री हेमचन्द्रविजय गणि (व्याकरणाचार्य) शिष्याणुः

श्री प्रद्युम्नविजयो मुनिः ।

प्रकाशकः

श्री अंधेरी गुजराती जैन संघ

श्री करमचन्द जैन पौषधशाळा

१०६ इर्लाब्रीज-एस. वी. रोड,

मुम्बई–४०००५६

वीर संवत् २५०२]

विक्रम संवत् २०३२

[नेमि संवत् २७

विद्वत्प्रकाण्ड श्रीमद्रत्नमण्डन गणि विरचितः

सुकृतसागरः ।

(संशोधितः पञ्चपरिशिष्टैः परिवर्द्धितश्च)

सम्पादकः संशोधकश्च

शासनसम्राट् पूज्याचार्य महाराज श्री विजय नेमि सूरीश्वर पट्टालङ्कार शास्त्रविशारदाचार्य महाराज श्री विजयामृतसूरीश्वर पट्टधर सौम्य स्वभावाचार्य श्री विजय देवसूरीश्वर शिष्यरत्नोपाध्याय श्री हेमचन्द्रविजय गणि (व्याकरणाचार्य) शिष्याणुः
श्री प्रद्युम्नविजयो मुनिः ।

प्रकाशकः

श्री अंधेरी गुजराती जैन संघ

श्री करमचन्द जैन पौषधशाळा
१०६ इर्लाब्रीज-एस. वी. रोड,
मुम्बई–४०००५६

वीर संवत् २५०२] विक्रम संवत् २०३२ [नेमि संवत् २७



किञ्चित् प्रकाशकीयम्–

पन्नरमा सैकामां थई गयेला पं. श्री रत्नमंडणगणि महाराज विरचित 'सुकृतसागर' ग्रंथ प्रगट करतां अमने आनंद थाय छे.

प्रयोजन – अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अने अनन्त सुख स्वरूप मोक्षनी प्राप्ति अर्थे ज्ञानी भगवंतोअे सर्व विरति धर्मनो उपदेश आप्यो छे. किन्तु जे जीवो आ प्रकारना धर्म तरफ अभिमुख होवा छतां, दैववशात् तेना पालन माटे असमर्थ छे, तेवा जीवोना श्रेयार्थे शास्त्रमां गृहस्थना विशेष धर्म अन्तर्गत जन्मकृत्य आदिनो निर्देश करायो छे. ते जन्मकृत्यो पैकी छट्ठुं कर्तव्य धर्मग्रंथो लखवा–लखाववा–वांचवा, वंचाववा–अर्थात् जिनागमनी उपासना करवी ए छे. कह्युं छे के–

न ते नरा दुर्गतिमाप्नुवन्ति, न मूकतां नैव जडस्वभावम् ।
न चान्धतां बुद्धिविहीनतां च, ये लेखयन्तीह जिनस्य वाक्यम् ॥

भावार्थ – जेओ श्री जिनेश्वरदेवोना आगमोने लखावे छे तेओ दुर्गतिने पामतां नथी, मूंगा थता नथी

मुद्रक :
श्री साईनाथ टाइपोग्राफी
४, कुन्ती कॉटेज, ६ वा रास्ता,
साताक्रुझ (पूर्व) मुम्बई-४०००५५.

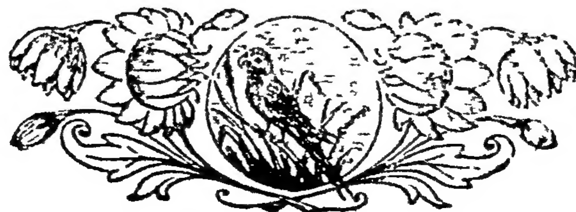
मूल्यम्
७-०० रुपया

प्राप्तिस्थान :
१. श्री अंधेरी गुजराती जैन संघ
श्री करमचन्द जैन पौषधशाला
१०६, इर्लाब्रीज, एस वी. रोड,
मुम्बई-४०००५६.

२. सरस्वती पुस्तक भंडार
हाथीखाना, रतनपोल,
अमदाबाद-३८०००१.

३. श्री अमृतसूरीश्वरजी ज्ञानमंदिर
दोलतनगर बोरिवली (पूर्व),
मुम्बई-४०००६६.

पूज्य साधु साध्वीजी महाराजने तथा ज्ञान भण्डारने सादर भेट.



उपाध्याय श्री हेमचन्द्रविजयजी म. सा. ना शिष्यरत्न छे. स्वभावे सरल, संयमप्रधान अने शासननी प्रभावना माटे उत्साही छे.

परमपूज्य उपाध्याय श्री भास्करविजयजी म. सा. अमारे त्यां वि. संवत २०२८ मां चतुर्मासार्थे बिराजमान हता. चातुर्मास दरम्यान धर्मग्रंथ छपाववा अंगे प्रेरणा मलतां अमोए तेआश्रीना हस्तक प्रकाशन करवानुं नक्की कर्युं हतुं परतुं ते पछी तेओश्री सौराष्ट्र तरफ पधार्या, पछी अचानक कालधर्म पाम्या तेओश्री अमारी प्रकाशन प्रवृत्तिना प्रेरक छे. आ प्रकारे आ बन्ने पूज्यश्रीनो अमारी उपर महान उपकार छे अने तेओश्रीने अमे भावपूर्वक वंदना करीए छीए.

अल्पसमयमां सुव्यवस्थित मुद्रण करी आपवा माटे अमो श्री 'साईनाथ टाइपोग्राफी (प्रीन्टींग प्रेस) ना आभारी छीए.

आ ग्रंथनो संपूर्ण व्यय, श्रीसंघना ज्ञानखातामांथी करवामां आव्यो छे.

प्रीयन्ताम् गुरवः ।

तारिखः ३ मार्च, १९७६.

श्री अंधेरी गुजराती जैन संघ

—प्रकाशक

जड स्वभाववाला थता नथी, आंधळा थता नथी तथा निर्बुद्धिपणाने पामता नथी.

(धर्मसंग्रह गुजराती भाषांतर पृ-३३१.)

आम आ प्रकाशननुं उद्देश्य अन्य धार्मिक अनुष्ठानवत् परंपराओ मोक्षनी प्राप्ति छे परंतु विशेष प्रयोजन श्रुतज्ञाननी पूजा भक्ति करवानुं छे. कह्यूं छे के–

पठति पाठयते पठतामसौ, वसन-भोजन-पुस्तकवस्तुभिः ।
प्रतिदिनं कुरुते य उपग्रहं, स इह सर्वविदेव भवेन्नरः ॥

भावार्थ–जे स्वयं भणे छे, बीजाने भणावे छे के भणनाराओने वस्त्र, आहार के पुस्तक वगेरेथी सहाय करे छे, ते सर्वज्ञ थाय छे. (धर्मसंग्रह गुजराती भाषांतर पृ-३३७.)

प्रस्तुत सुकृतसागर (पेथडकुमाररनुं चरित्र) ग्रंथ पूर्वे, व्याख्यानमां भावना अधिकारे अनेक आ वार वंचातो हतो. परंतु वर्तमान समये प्रत दुष्प्राप्य होवाने कारणे आ ग्रंथनुं श्रवण दुर्लभ छे. आथी ग्रंथ पुनर्मुद्रण कराववा जेवो छे एवो उपदेश पूज्यश्री पासे सांभळीने तदनुसार आग्रन्थनुं पुनर्मुद्रण कराववानुं अमे नक्की कर्युं छे. ग्रंथविषय— संपादक परमपूज्य मुनि श्री प्रद्युम्नविजयजी म. साहेबे, तेमनी श्रमसाध्य माहितीप्रद प्रस्तावनामां, ग्रंथ तथा ग्रंथकार विषे सविस्तर रजुआत करी छे.

संपादक परमपूज्य मुनि श्री प्रद्युम्नविजयजीनो बे शब्दमां परिचय आपवो होय तो तेओ परमपूज्य सौम्यमूर्ति आचार्य श्री विजय देवसूरिजी म. सा. ना विद्वान् शिष्य रत्न व्याकरणाचार्य प. पू

बे

बे

अंतरंग धर्मपरिणाति ए बधुं एवी कोटिनुं हतुं के सम्यग्दृष्टि आत्मा सांभळीने अनुमोदना करीने ज जंपे. तेना हैये प्रमोदभावनो उछाळो आवे. तेवाज प्रमोद भावथी प्रेराइने महामात्य झाञ्झणकुमारना स्वर्गवास पछी २०० वर्षे श्री रत्नमंडण गणि आ चरित्रग्रन्थनी रचना करे छे. वि. सं १३४० वर्षे वसन्तपञ्चमी ना शुभदिवसे झाञ्झण कुमारे ऐतिहासिक तीर्थ यात्रा संघनुं मंगलप्रयाण कर्यु अने त्यार पछी लगभग २०० वर्षे वि. सं. १५१७ आस पास आ चरित्र रचायुं छे.

ऐतिहासिक उल्लेख—

चरित्र नायक मंत्रीश्वर पेथडे सङ्ख्याबंध नूतनजिनालयो बंधाव्या छे. अनेक मनोहर जिनबिम्बो भराव्या छे घणांबधां ग्रन्थो लखाव्या छे. एकथी वधारे ज्ञान भंडारो स्थाप्या छे. ते पैकीना घणां खरानी नोंधमात्र आजे मळे छे. केटलांक कार्योनां चरण चिन्हो इतिहासग्रन्थो सिवाय क्यांय जोवा मळतां नथी.

एक शिलालेख पर्वतराज आबूमां मळे छे, लूणिक वसतिनी नवीचोकीनां अग्नि खूणानां छेल्ला थांभलां पर एक लेख छे. जेमां संघवी श्री पेथडकुमार द्वारा आ चैत्यनो जीर्णोध्धार कराव्यानुं लख्युं छे. ते लेख आ प्रमाणे छे.

आचन्द्रार्कं नन्दतादेष सङ्घा-धीश, श्रीमान् पेथडः सङ्घयुक्तः ।
जीर्णोद्धारं वस्तुपालस्य चैत्ये तेने, येनेहाऽर्बुदाद्रौ स्वसारैः ॥

१· पं. श्री कल्याण विजयजी लिखित प्रबन्ध पारिजात-पृ. ३२९

पांच

❀ प्रास्ताविक निवेदन ❀

अनन्त उपकारी चरम तीर्थपति श्रमण भगवान् श्री महावीर प्रभुना शासनने शोभावनारा मगध सम्राट् श्रेणिक, महाराजा सम्प्रति, परमार्हत् कुमारपाल वगेरे अनेक नामांकित राजवीओ, विमलशाह मंत्री, मंत्रीश्वर उदयन, बुद्धिधन वाग्भट्ट (बाहड), आम्रदेव, वीरधीर वस्तुपाल तेजपाल, दयालशाह वगेरे महामात्यो, अने जगडूशाह आभू वगेरे स्वनामधन्य श्रेष्ठीओना नाम इतिहासने पाने सुवर्णाक्षरे लखायां छे. ते बधानां नाम विरलजन करी शके तेवा काम करवाना कारणे अजर-अमर बन्याछे. एवां श्रावक रत्न नरवीरोनी जे यादी बनावीए तेमां औदार्यादिगुणनिधिश्रीदेदाशाह, विवेकशील मंत्रीश्वर पेथडशाह, शूर वीर संघपति श्रीझाञ्झणकुमार, ए पिता-पुत्र अने पौत्रनां नाम अने स्थान काळनो काट न लागे तेवा-कामना बळे आगळी हरोळमां चळकतां रहे तेम छे.

तेओए शासनप्रभावक सुकृतो हृदयनी श्रद्धापूर्वक सेव्यां हता. विरल अहोभाव, प्रगाढ शासनप्रीति,

प्रसङ्गो आ ग्रन्थने लगभग मळतां छे.

एक उपदेशसप्ततिकामां आवतो उपदेशमाळावाळो प्रसङ्ग (जुओ परिशिष्ट ४) आ ग्रन्थमां नथी आवतो.

सहस्रावधानी विद्वदग्रेसरश्रीमुनिसुन्दरसूरिजी महाराज कृतगुर्वावली ग्रन्थमां पण मन्त्रीश्वर पेथडे निर्माण करेलां ७७ किंवा ८४ जिनमन्दिरना स्थानोल्लेखसाथेनुं स्तोत्र मळे छे. ते पण खूब नोंधपात्र छे.

(जुओपरिशिष्ट–१)

श्री पेथडकुमारनां चरित्रने वर्णवतो एक रास पण पन्नरमा शतकनी शरुआतमां रचाएलो मळे छे.[1] झाञ्झणकुमारनां जीवनने वर्णवती 'झाञ्झण प्रबन्ध' नामनी एक नानी प्राचीनकृति पण छे एम जाणवा मळे छे.

आ ग्रन्थनो परिचय—

आ ग्रन्थमां कुल आठ तरंगो छे. अने तरङ्गान्तर्गत अनेक घटनाने वर्णवता अलग-अलग प्रबन्धो छे. कुल श्लोको १३७४ छे. तेमां ११३ श्लोको चालु प्रसङ्गने पुष्टि आपनारा अन्य ग्रन्थोमांथी उध्धृत करेला छे तेमां छन्दोनुं वैविध्य पण सारा प्रमाणमां छे.

आखो ग्रन्थ पद्यमां छे. चरित्र लेखन शैली पक्व, प्रौढ अने प्रासादिक छे केटलांक श्लोको-वर्णनो महाकाव्यनी कोटीना छे. समग्रग्रन्थ रसभर्यो अने हृदयस्पर्शी छे. तेथी तेना केटलांय प्रसङ्गो. उक्तिओ

१. जुओ जैन गूर्जर कविओ भा. १. पृ. ३५ मंडलिक पेथडेरास.

आ प्रसङ्ग ज्यारे महामन्त्री पेथडकुमार सुवर्णसिद्धिप्रयोग अजमाववा जिरावलाजीनी यात्राकरीने अर्बुदगिरि जाय छे अने त्यां सात-सात रात-दिवसना अखंड परिश्रमे पुष्कळ सोनुं बनावे छे. अने पछी श्री आदीश्वर भगवाननां चैत्यमां भावपूजा करता करता भावोल्लास वृद्धिपामता सेवायेला पापना तीव्र-पश्चात्ताप साथे प्रतिज्ञा करे छे· के "हवे पछी सुवर्णसिद्धिनो प्रयोग कदी करीश नही. अने आ तमाम सुवर्ण देवद्रव्य तरीकेज वापरीश." एज द्रव्यमांथी आ चैत्यनो जीर्णोद्धार कराव्यो होय तेम लागे छे.
(जुओ तरंगत्रीजो, प्रबन्ध १९ भाग्यपरीक्षा)

आ सिवाय पण बीजा अनेक शिलालेखो–ग्रन्थप्रशस्तिओ हशे पण ते बधुं हाल प्रगट के प्रसिद्ध नथी. संशोधननो विषय छे.

अन्य ग्रन्थोमां उल्लेख–

औपदेशिक ग्रन्थोमां परमात्मानी पूजाना अधिकारमां साधर्मिक भक्तिना प्रसङ्गमां, गुरुप्रवेशोत्सवना उपदेशमां घणां ग्रन्थोमां श्रावकरत्न श्री पेथडकुमारना प्रसङ्गो उदाहरणरुपे जोवामां आवे छे. ते बधानुं मूळ आ ज सुकृतसागर ग्रन्थ छे. पण्डित श्रीरत्नमंडणगणि कृत उपदेशतरङ्गिणीमां पण्डितश्रीसोमधर्म विरचित उपदेशसप्ततिमां पं. श्रीकुशलसारगणि रचित उपदेशसार (अपरनाम उपदेश रसाल) मां आ ग्रन्थने आधारे ज श्रीपेथडकुमार, झाञ्झणकुमारना प्रसङ्गो आपवामां आव्या छे. ते ते ग्रन्थोमां मळतां

तेनुं संपादन-संशोधन पूज्यपाद प्रवर्तक श्री कान्तिविजयजी महाराजना शिष्यरत्न महान् संशोधक मुनिराज श्री चतुरविजयजी महाराजे कर्युं छे. तेना टाइप पण सारा छे. जरुरी टिप्पणो पण आप्या छे. पण ५० वर्ष पुराणी ए प्रतना कागळ जीर्ण थइ गया छे. हाथनो स्पर्श थतां वेंत बटकी जाय छे अने बधा ज्ञान भंडारमां सुलभ पण नथी.

आ ज ग्रन्थनुं बीजुं प्रकाशन वि. सं. १९९७ मां लुवारनी पोल-जैन उपाश्रय तरफथी पन्यास श्री मोतिविजयजी महाराजना स्मरणार्थे तेमना ज शिष्यरत्नश्री पन्यासप्रवर मंगलविजयजी महाराजना प्रयत्नथी थयुं छे तेमां व्याख्या पण आपवामां आवी छे. पण अक्षरो झीणां-झीणां होवाथी. वाचवामां सुखद नथी[1]

---

१ आसिवाय श्री देदाशाह श्री पेथडकुमार संबंधी गुजराती वार्ता साहित्य पण लखातुं जाय छे ताजेतरमां ज मुनिराज श्री पूर्णचन्द्र विजयजीए नवलकथानी शैलीमां बावन प्रकरणमां पेथडकुमारनी कथा लखीने ते 'कल्याण' मासिकमां क्रमशः प्रगट पण करी छे.

'श्री देदाशाह' ए ज नामनी एक नवलकथा श्री मो. चु. धामीए लखी छे. सुशीले पण पेथडकुमारनुं चरित्र सीधीसादी गुजराती-मां लख्युं छे. मुनिश्री जयपद्मविजयजी महाराजे पण संक्षेपमां श्रीपेथडकुमारनुं चरित्र प्रगट कर्युं छे. शान्तमूर्ति श्री हंसविजयजी महाराज संपादित एक हिन्दी पुस्तक 'मांडवगढ और मंत्रीश्वर पेथडकुमार' मां पण मालवमंडण मांडवगढ अने श्री पेथडकुमारनो अच्छो परिचय मळे छे.

नव

पूज्य आचार्य वर्य श्री धुरन्धरसूरि महाराज लिखित 'मांडवगढनी महत्ता' ए पुस्तकमां पण श्री पेथडकुमारनां महत्वनां उल्लेखो-वर्णनो छे. ते नाना पुस्तकमां पण घणी ऐतिहासिक माहिति आपवामां आवी छे.

वाचक-श्रोताना मन-मगजमां कायम माटे वसी जाय छे. ग्रन्थ क्यांय नीरस थतो नथी, प्रसंगे प्रसंगे आवता उधृतश्लोको पण कर्तानां बहुश्रुतपणानो, सहृदयतानो अने व्याख्यान चातुर्य-कौशल्यनो परिचय आपे छे.

ग्रन्थ रचयितानो परिचय–

आ चरित्र ग्रन्थना रचयिता श्री रत्नमंडनगणि महाराज, वृहत् तपागच्छ नायक श्री रत्नशेखर-सूरिना, प्रशिष्यरत्न अने श्रीनंदीरत्नना शिष्यरत्न छे. श्री रत्नशेखरसूरिजीनो सत्ता समय वि. सं. १४५२ थी. वि. सं. १५१७ सुधीनो निर्णीत छे. तेथी ग्रन्थ कर्तानो सत्तासमय तेज छे. ग्रन्थनी प्रशस्तिमां ग्रन्थ क्यारे पूर्ण करवामां आव्यो ते वर्ष-स्थाननो उल्लेख मळतो नथी फक्त गुरु परंपरानो परिचय मळे छे.

श्रीरत्नमंडणगणिवरे बनावेलो 'जल्प कल्पलता' नामनो ग्रन्थ सहृदयवाचकजनने आल्हाद आपे छे संस्कृत भाषामां वचनचातुरी शीखवामां आ मूर्धन्य ग्रन्थ छे. ते सिवाय पण उपदेशतरङ्गिणी अने जूनी गुजरातीमां नेमिनाथ नवरस रचेलो फाग; नारी निरास रास, अने भोजप्रबन्ध अपरनाम प्रबन्धराज (वि. सं. १५१७) वगेरे ग्रन्थो मळे छे·

प्रस्तुत प्रकाशन–

आ ग्रन्थ चातुर्मास्यना व्याख्यानमां भावनाधिकारे घणा बधा स्थळे वंचाय छे.

सर्व प्रथम आ ग्रन्थ वि. सं. १९७१ मां श्री आत्मानंद सभा (भावनगर) तरथी प्रसिद्ध थयो छे.

आठ

मणीभाइ संघवीए मांगणी करीके आ ग्रन्थना प्रकाशननो लाभ अमारा अंधेरी गुजराती जैन संघने आपो. आ ग्रंथ अमारा संघ तरफथीज प्रसिद्ध थाय तेम इच्छीए छीए. आरीते चरित्रना मुद्रण वगेरनी आर्थिक जवाबदारी अंधेरी गुजराती जैन संघे संभाळी लीधी· मुद्रणनी जवाबदारी साईनाथ टाईपोग्राफीना तिवारी बंधुओए संभाळी लीधी.

ग्रन्थनुं मुद्रण सुघड-सुन्दर अने शुद्ध थाय तेमाटे बनती काळजी राखी छे. छतां दृष्टिदोषथी प्रमादथी के कम्पोझीटरना अज्ञानथी जे कांइ अशुद्धि रही गई होय तेने शुद्धिपत्रकमां जोइ-सुधारीने ज वांचवानी नम्र भलामण सुज्ञ- सज्जन-वाचकोने अने विद्वद्वर्य मुनिवरोने करुं छुं.

मारा संयमजीवनना बीजा बधां कार्योनी जेम आ चरित्र ग्रन्थना संकलन-संपादनमां पण मारा परमोपकारी पूज्यपाद सौम्यमूर्ति आचार्य महाराज श्री विजय देवसूरीश्वरजी महाराजसाहेब तथा मारा परमपूज्य परमोपकारी परमकृपालु श्रध्धेय गुरुवर्य उपाध्यायश्री हेमचन्द्रविजयजी महाराज साहेब (व्याकरणाचार्य) नी महती कृपा, सतत सहयोग, अने प्रेमाळ आशीर्वाद मने मळयां छे अने तेज मारुं जीवन बळ छे. ते ऋण कदापि फेडी शकाय तेम नथी.

वळी संयमजीवनना विकास तथा ज्ञान-संस्कार वृद्धिमां परम कारणभूत शासनप्रभावक पूज्य आचार्य महाराज श्री विजय मेरुप्रभसूरीश्वरजी महाराज तथा समर्थविद्वान् पूज्य आचार्य महाराज श्री विजय धर्मधुरन्धिर सूरीश्वरजी महाराजनो उपकार पण सदा स्मरणीय छे·

वि. सं. २०२९ नी सालनुं चोमासुं दोलतनगर (बोरिवली पूर्व मुंबई–६६) श्री अमृतसूरीश्वरजी ज्ञानमन्दिरमां थयुं. त्यां सूत्राधिकारे श्रीयोगशास्त्र, अने भावनाधिकारे आ ग्रन्थ (सुकृतसागर) वांचवानुं नक्की थयुं. चातुर्मास्य दरम्यान ए ग्रन्थ व्याख्यानमां सम्पूर्ण वांच्यो. श्रोतावर्गने पण चरित्रना प्रसंगो वारंवार वागोळवा जेवा लाग्या. चरित्रनी रचना शैलीथी प्रसंगोथी-घटनाथी-मने आकर्षण थयुं. अने आवा चरित्र ग्रन्थनुं पुनर्मुद्रण थाय तो आ चरित्र सुलभ बने. ए विचार आव्यो अने ते वात में मारा परमकृपालु गुरुमहाराज श्री श्रीहेमचन्द्रविजयजी महाराजने जणावी तेओने पण वात गमी अने मने संपादन करवाने प्रोत्साहित कर्यो. में ते अंगेनी कार्यवाही शरु करी. प्राकृतगाथाओनी संस्कृत छाया लखी. पानादीठ-विषयपरिचायक शीर्षको लख्यां. जूनी आत्मानंद सभानी आवृत्तिमां ज्यां टिप्पणो आपवा रही गया छे अने आपवा जेवा लाग्या त्यां जरुरी टिप्पणो अने विषमशब्दोना अर्थ-पर्याय आप्या अने ग्रन्थपूर्ण थयाबाद श्री देदाशाह, पेथडकुमार, अने झाञ्झणकुमारनां प्रसंगो ज्यां ज्यां, जे जे ग्रन्थोमां मळे छे ते ते प्रसंगो परिशिष्टमां आप्या. (जुओ परिशिष्ट १, २, ३, ४). संघपति झाञ्झणकुमारनो विरल ऐतिहासिक प्रसंगने रोचकशैलीमां वर्णवती श्री सुबोधचन्द्र नानालाल शाह लिखित 'राज्यवात्सल्य' ए कथा पण परिशिष्ट (५) मां आपी छे. आम श्री पेथडकुमार, झाञ्झणकुमार-संबंधी प्राप्य लगभग सघळां सन्दर्भो संगृहीत करवानो अहीं प्रयत्न कर्यो छे. आरीति ए संपादननुं कार्य में यथामति कर्युं छे.

प्रस्तुत चरित्र ग्रन्थनुं संकलन-संपादन कार्य चालु हतुं त्यारेज संस्कृत अभ्यास प्रेमी हर्षदभाइ

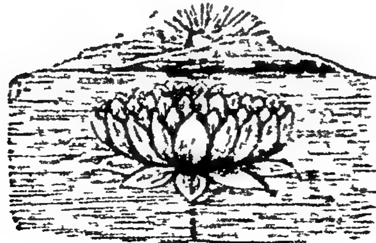
अ नु क्र म णि का

आत्मीयभावे संपादन कार्य माटे मने जेओए उत्साहित कर्यो अने प्रसंगे प्रसंगे आवश्यक सूचनो आप्यां छे ते पं. श्री अम्बालाल प्रेमचन्द शाहनुं पण अहीं सादर स्मरण करुं छु.

प्रान्ते आ चरित्रने वांची सांभळीने पेथडकुमार जेवुं औदार्य झाञ्झणकुमार जेवो शासन समर्पणभाव धर्मशौर्य अने अथाग-शासनराग-तमाम भव्यजीवोमां प्रागट्य पामो अने सघळा जीवो मोक्षसुखने पामो ते ज एकनी एक अभिलाषा पूर्वक विरमुं छुं.

लि. श्रमण संघसेवक
महोपाध्याय श्री हेमचन्द्रविजय महाराज
चरणचञ्चरीक मुनि प्रद्युम्नविजय

श्री अमृतसूरीश्वर ज्ञान मन्दिर,
दोलतनगर बोरिवली (पूर्व) मुंबई–६६.
फागणसुदि ३, वि. सं. २०३२



शुद्धि–वृद्धि पत्रकम्

पत्राङ्कः	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
४	१३	क्षैरयी	क्षैरेयी
५	२	'आमेघडे' गाथानी संस्कृत छाया–	
		अपक्वे घटे निक्षिप्तं यथाजलं तं घटं विनाशयति।	
		इव सिद्धान्त रहस्यं अल्पाधारं विनाशयति ॥	
६	१	पादरम्	पारदम्
७	३	वार्ता मता	वार्ता मेता
७	८	'मा होह' गाथानी संस्कृत छाया–	
		मा भवतु श्रुतग्राही मा प्रत्येतु यन्न दृष्टिप्रत्यक्षम्।	
		प्रत्यक्षेऽपि तु दृष्टे युक्ता युक्तंविचारयेत् ॥	

पत्राङ्कः	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
७	१०	श्रत्वा	श्रुत्वा
१३	१	युमाभि	युष्माभि
१५	३	सच्चके	सच्चक्रे
१७	१३	स्वप्नरय	स्वप्नस्य
२६	१	स्तद्विषा	स्तद्‌विषा
३५	९	धान्यशिषः	धान्यविशेषः
३५	८	यथेति	ययेति
३७	१	सादारं	सादरं
३९	४	चये	येच



पत्राङ्कः	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
१२३	१३	पुंसो	पुंसो
१२३	१३	यथाङ्ख्यं	यथासङ्ख्यं
१२६	८	झाज्झणो	झाञ्झणो
१३१	६	मासिमसि	मासि मासि
१३५	९	पुन्दर	पुरन्दर
१४२	३	पर्श्वां	पार्श्वां
१४३	६	ह्रैमममा	ह्रैमनमा
१४९	७	ततोलोके	ततोलोकै
१५५	१	घय्यो	घट्यो
१५५	१	व्ययथी	व्यथी
१५६	५	स्वमिन्!	स्वामिन्
१५९	६	वयारेय	क्यारेय
१५९	१२	महारजे	महाराजे
१६०	१४	उपाडीन	उपाडीने
१६१	३	भवित	भक्ति
१६४	७	अवा	ऐवा
१६५	९	संघापति	संघपति
१७१	१३	जोय	जोयुं

—इति शुद्धि-वृद्धि पत्रकम्—



पत्राङ्कः	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः	पत्राङ्कः	पंक्तिः	अशुद्धिः	शुद्धिः
३९	४	छिन्नन्ते	छिन्नो	८०	६	स्वर्णकङ्कणिका	स्वर्णकिङ्किणिका
४०	८	सिंतहः	सिंहतः	८९	२	चम्बाले	जम्बाले
४०	९	प्रभु तां	प्रभुतां	९१	३	प्रवशाय	प्रवेशाय
४५	१०	परिक्षा	परीक्षा	९३	१०	सुवर्ण मठितो	सुवर्ण मढितो
५८	१	सस्त्रकः	सहस्त्रकः	९४	१	स्तनाख्रयः	स्तेनाख्रयः
५८	९	हेमाहिना	हेमादिना	१००	८	कौकुवम्बरम्	कौकुदम्बरम्
५८	१०	यावत्रिहायनीम्	यावत्त्रिहायनीम्	१०१	२	वद्धयो	वृद्धयो
७०	१	दर्दुस्या	दर्दुरस्या	१०५	७	अतपाथोधि	श्रुतपाथोधि
७०	२	भुजङ्ग	भुजङ्गः	१०७	४	माश्रतम्	माश्रुतम्
७४	२	अर्हितवान्=पूजितवान्इत्यर्थः।		११५	४	सवषु	सर्वेषु
७४	८	कृष्णा=द्रौपदी इत्यर्थः।		११५	५	पृष्ठ	पृष्ठे
७७	२	पुनरागमशङ्का	पुनरागमनशङ्का	११५	९	मन्त्री शमातुलः	मन्त्रीश मातुलः
८०	४	तब्रुवे	तद्ब्रुवे	१२१	६	इइि	इति

ॐ ह्रीँ अर्हं

श्रीशङ्खेश्वरपार्श्वनाथाय नमः ।

सदा स्तुवे श्रीगुरुनेमिसूरिं, सूरिं तथा श्रीविजयामृताऽऽह्वम् ।

पण्डितप्रकाण्डश्रीमद्रत्नमण्डनगणिविरचितः

सुकृतसागरः ।

अथ देदावदातपुरस्सर-श्रीपेथडोत्पत्तिकथनो नाम प्रथमस्तरङ्गः ।



कल्पद्रव इवेष्टं वः, कुर्वन्तु परमेष्ठिनः । पुष्पपल्लव-किञ्जल्कच्छदषट्पदसुन्दराः ॥१॥

विद्याबीजानि जाने या, नमुषां दातुमुद्यता । अक्षमालाच्छलाद्धत्ते, पाणौ सा पातु भारती ॥२॥

खण्डमेकमवन्तीनामखण्डसुखभुग्जनः । नम्याटो नाम देशोऽस्ति, द्युरम्याऽऽटोपजित्वरः ॥१२॥
तत्रास्ति रिपुभूपानां, दुरीक्षा नान्दुरी पुरी । यत्र श्रीणां निधौ रक्षाविधौ वप्रः फणीयते ॥१३॥
नम्याटो नान्दुरी नेमिनाथो मन्त्री नरायणः । नागिणी गणिका नागः, श्रेष्ठी योगी नगार्जुनः ॥१४॥
इत्यादीनां नकाराणामाधिक्ये यत्र सत्यपि । अभून्न कापि लोकानां, नकारो दानकर्मणि ॥१५॥
ऊकेशवंशमुक्ताभश्रीपद्मेभ्यकुलोद्भवः । देदः साधुरभूत्तत्र, परं दारिद्र्यमन्दिरम् ॥१६॥ उक्तं च—

"चन्द्रे लाञ्छनता धने चपलता क्षारं जलं सागरे, सर्पाश्चन्दनपादपेषु विरहः प्रेमास्पदे मानुषे ।
पुंरत्नेषु जरा सुरेषु पतनं विद्वत्सु दारिद्र्यमि-त्येवं सर्वमकारि दूषणपदं सद्वस्तु दुर्वेधसा ॥४॥"

व्याजेन द्रव्यमादाय, प्रत्यर्पयितुमप्रभुः[1] । शरण्यकृत[2] सोऽरण्यमुत्तमर्णभिया[3]ऽन्यदा ॥१७॥ उक्तं च—
"प्रासादे शयनं विकालमशनं मिथ्यार्थसंदर्शनं, स्वस्यापह्नवनं निशासु गमनं भट्टैश्च संतापनम् ।
संबाधानयनं सचाटुवचनं माहात्म्यनिर्वासनं, यद्याकर्षसि[4] दुःखकारणमृणं तत्पूर्वमेतत्पठ ॥५॥"
भोज-नव्यसरःप्रादुर्भूतभूषितमौलिना । को जीवतीति त्रिः पृष्टे, धनपालोऽप्यदोऽवदत् ॥६॥
"पञ्चमेऽहनि षष्ठे वा, शाकपाको यदालये । अनृणी चाप्रवासी च, स वारिचर ! जीवति ॥७॥"
तत् सद्वर्णिकस्वर्ण-दुर्वर्णकरणप्रभुः । आकर्षण-वशीकार-कार्मणादिकलास्पदम् ॥१८॥

---

१. असमर्थः । २. शरणी चक्रे । ३. धनस्वामिभयेन । ४. वहसि-वोढु-मिच्छसि ।

श्रीसोमसुन्दराचार्यपट्टपूर्वाद्रिहेलयः । तेजस्विनो जयन्ति श्रीरत्नशेखरसूरयः ॥३॥
बिभ्रती शिष्यहृन्मञ्जु-मञ्जूषोद्धाटपाटवम् । श्रीनन्दिरत्नगीश्चित्रमवक्रा कुञ्चिकाश्रयत् ॥४॥
लक्ष्मीः पुंसामलङ्कारस्तस्या दानमलङ्कृतिः । तत्पुनः पात्रयोगे स्यादनन्तफलदायकम् ॥५॥ उक्तं च—

"गात्रे धनं योजयते विमुग्धः, पात्रे धनं योजयते विदग्धः ।
गात्रेण पात्रेण न भुक्तदत्तं, खात्रेण तद्याति जडस्य वित्तम् ॥१॥"

गृणन्ति नामतः पात्रं, गणिकामपि निर्गुणाम् । नामानुगपरीणामं, परं पात्रं मतं सताम् ॥६॥ यतः—
"पाकारेणोच्यते पापं, त्रकारस्त्राणवाचकः । अक्षरद्वयसंयोगे, पात्रमाहुर्मनस्विनः ॥२॥"
स्थावरं जङ्गमं चेति, पात्रमाहुर्द्विधा बुधाः । स्थावरं तत्र पुण्याय, प्रासादप्रतिमादिकम् ॥७॥
ज्ञानाधिकं तपःक्षामं निर्ममं निरहङ्कृति । स्वाध्यायब्रह्मचर्यादियुक्तं पात्रं तु जङ्गमम् ॥८॥
या न पात्रे भवाम्भोधियानपात्रेऽर्हदादिके । कृतार्थीक्रियते लक्ष्मीरलक्ष्मीरेव सा मता ॥९॥ यतः—
"शस्यश्रीभोगकृद्दानं, सर्वं जीमूतवारिवत् । परं सत्पात्रदानं स्यात्स्वात्यम्भ इव मौक्तिकम् ॥३॥"
सप्तक्षेत्र्यां वित्तबीज-मुप्तं श्रद्धाम्बुवर्द्धितम् । निदानादीनिभिः शून्यं, भवेच्छस्यफलप्रदम् ॥१०॥
ततः पृथ्वीधरानेकप्रबन्धोज्ज्वलमौक्तिकम् । कुर्वे सुक्षेत्रवृष्टिहेतुं सुकृतसागरम् ॥११॥ तथाहि—

१. सूर्याः । २. मेघः । ३. सुवर्णम् ।

भुक्त्वाऽथ सुहिते[1] साधौ, कुलाचारादिभिर्गुणैः । तस्यार्हस्या[2]भवद्दातुं, हेम्नामाम्नायमुत्सुकः ॥२८॥ उक्तं च
" आमे घडे निहित्तं, जहा जलं तं घडं विणासेइ । इय सिद्धंतरहस्सं, अप्पाहारं विणासेइ ॥१२॥ "

सर्वत्रोपचिकीर्षा[3], महतां खलु सा च युज्यते स्थाने ।
पर्जन्योऽप्यभिवर्षति, मरुस्थले शिथिलनिर्बन्धः ॥१३॥"

योगीन्द्रोपासना ।

ततो जगाद योगीन्द्रः, करुणावरुणालयः[4] । उपकारं करोम्येकं, यद्युक्तं कुरुषे मम ॥२९॥
साधुः स्माह नमन्नीदृग्, ब्रूथ किं भवतां वचः । इन्द्रोऽप्युल्लङ्घितुं नालं, कियन्मात्रो हि मादृशः ? ॥३०॥
आधाय स्वान्तधामान्तः, पुण्यप्राप्यं भवद्वचः । नित्यमाराधयिष्यामि, चिन्तारत्नमिवेष्टदम् ॥३१॥
योग्यभाषिष्ट योग्यस्य, रैसिद्धिं दित्सुरस्मि ते । लब्ध्वा तां तु नकारो न, कार्यः काऽप्यर्थिनस्त्वया ॥३२॥
कस्यापि हि वणिग् लोभी, न दत्तेऽपि कपर्दिकाम् । अदातुः स्वर्णसिद्ध्या तु, दत्तया किं प्रयोजनम् ?॥ ३३॥
उक्तं च—

" देशाधीशो ग्राममेकं ददाति, ग्रामाधीशः क्षेत्रमेकं ददाति ॥
क्षेत्राधीशः प्रस्थमेकं प्रदत्ते, नन्दस्तुष्टो हस्ततालीं ददाति ॥१४॥"

तेनाथ स्वीकृते वाक्ये, व्यक्तयोपालक्षयद्वने । दौःस्थ्यकुञ्जरो[5]रुदन्तीं स, रुदन्तीप्रमुखौषधीः ॥३४॥

१ तृप्ते । २ योग्यस्य । ३ उपकारकर्तुमिच्छा । ४ करुणासमुद्रः ५. । दारिद्र्यलतामण्डपभञ्जने प्रौढहरतीवेत्यर्थः ।

बद्धपद्मासनः स्वर्णदण्डः, स्फाटिककुण्डलः। भस्मोद्धूलनकृत्तेनाऽलोकि योगी नगार्जुनः ॥१९॥ (युग्मम्)
तं विद्यासिद्धमालोक्य, मन्वानो निःस्वतां गताम्। बभूवानन्दतः पीवा, कलापीवाम्बुदं तदा ॥२०॥ यतः—
"देवाण वरं सिद्धाण-दंसणं गुरुनरिंदसम्माणं। नट्ठधणस्स य लाहं, पुण्णेहिं विणा न पावेंति ॥१॥"
उत्तमर्णभिया पुर्यामयानादकृताशनः। तत्र स त्रिदिनीं निन्ये, योगीन्द्रोपासनापरः ॥२१॥
मुक्ताहारस्य दुःस्थस्य, योगीशस्तस्य शस्तया। सेवया स्तोकयाऽप्यासीदावर्जितमनास्तदा ॥२२॥ यतः—

वन-गमनम्।

"कृतज्ञा नेत्र-सुरभि-सुक्षेत्रावनि-शुक्तिभाः। शैल-देहो-परव्याल-तुल्यास्तु कृतघातिनः ॥९॥"
योग्यवोचत् कृपायोग्यं, तं मत्वाऽश्वासि किं न भोः!। स त्ववक्कारणं सत्यमसत्यार्हा न हीदृशाः ॥२३॥ यतः—
"सत्यं मित्रैः प्रियं स्त्रीभिरसत्यं द्विषता सह। सत्यं प्रियं च पथ्यं च, वक्तव्यं स्वामिना समम् ॥१०॥"
ततः स कृत्वा हुङ्कारं, शक्तिमानम्बराध्वना। तत्कालं स्थालमानिन्ये, प्राज्यखण्डाज्यपायसम् ॥२४॥
"पञ्च नश्यन्ति पद्माक्षि! क्षुधार्तस्य न संशयः। तेजो लज्जा मतिर्मानं, मदनश्चापि पञ्चमः ॥११॥"
भुङ्क्ष्वेति भणिते तेन, निर्दम्भः साधुरभ्यधात्। नाहमज्ञातगेहस्याहारमद्मि त्वया हृतम् ॥२५॥
सन्तो मुञ्चन्ति नाचारं, सङ्कटे विकटेऽपि हि। छेदघर्षादिकष्टेऽपि, चन्दनं चारुसौरभम् ॥२६॥
नान्दुरीवासिनागेभ्यगोत्रदेव्यग्रढौकिता। क्षैरयीयमिति स्माह, योगी चेटोक्ततद्गृहः ॥२७॥

छाया – देवानां वरं सिद्धानां दर्शनं गुरुनरेन्द्रसन्मानम्। नष्टधनस्य च लाभ पुण्यैर्विना न प्राप्नुवन्ति ॥ १. स्थूलः। २. मयूर इव।

देदस्य राजसभागमनम् ।

शृण्वन्तु कौतुकं सभ्याः ! सोऽथ गम्भीरधीरधीः । स्वर्ण, कुर्वन्नपि स्वर्ण, दौःस्थ्येन सह चिच्छिदे ॥४३॥
मत्वा विलसिताल्लक्ष्मीं, कस्तूरीमिव सौरभात् । लेकैरजल्पि लेभेऽसौ, नूनं कापि महानिधिम् ॥४४॥
वार्तामेतामसत्यामप्यवक्कोऽपि नृपाग्रतः । जिनस्यापि द्विषश्चेत्तन्न स्युरन्यस्य किंतराम् ॥४५॥
चतुरोऽन्यस्वमादातुं चतुरोऽनुचरान्नृपः । प्रैषीदाख्याय देदाख्यः संशोध्यानीयतामिति ॥४६॥
भोक्तुं यावदुपाविक्षत्तावदागत्य पत्तयः । अभुक्तमेव तं निन्युः, पुरस्तादवनीपतेः ॥४७॥
वाणीमभाणीत्क्षोणीशः, प्रति तं देद ! यज्जनाः । निधिर्लब्धस्त्वयेत्याहुस्तत् किं सत्यमुतान्यथा ? ॥४८॥
देदः स्माह श्रुतग्राही, मा भूर्देव ! विचारय । मादृशां कीदृशं भाग्यं, लभ्यते येन शेवधिः ॥४९॥ उक्तं च—
"मा होह सुअग्गाही, मा पत्तिह जं न दिट्ठिपच्चक्खं । पच्चक्खेवि हु दिट्ठे, जुत्ताजुत्तं विआरिज्जा ॥१६॥
राजाऽवग् वद निर्मायं! । निर्मायत्वं यथास्थितम् । नन्दानां यदहं वेद्मि, चरितान्याखिलान्यपि ॥५०॥ तथापि—

"श्रुत्वा दुर्वाक्यमुच्चैर्हसति मुषति च स्वीयमानेन लोकं,
क्रयर्थं गृह्णाति पण्यं बहुकमिति वदन्नर्धमेव प्रदत्ते ।
स्वीयान्यायेऽपि पूर्वं व्रजति नृपगृहं लेख्यके कूटकारी,
मध्ये सिंहप्रतापः प्रकटमृगमुखः स्याद्वणिक्कूटप्रष्ठः ॥१७॥"

---

१ स्वकीयऋणम् । २ चतुःसङ्ख्याकान् ॥ ३ वणिजाम् ।

सुवर्ण सिद्धि-दानम् ।

कारयित्वा रसं तासामर्धमेलितपादरम् । तेन चोक्तं विधाप्यायः, क्षेपयामास पावके ॥३५॥
जातरूपे तदा जाते, सार्धषोडशवर्णिके । स्वयं तत्प्रत्ययार्थं सोऽकारयत्तं सकृत् पुनः ॥३६॥
तापे रक्तं सितं छेदे, कषे चम्पकचारु च । स्वर्णं मृदु गुरु स्निग्धं, तदाऽभूल्लक्षणान्वितम् ॥३७॥
पुस्फोर स्फारपुण्येन, सिद्धिः साधोऽस्तु साधिकम् । आनुकूल्यं गते दैवे, किं न संपद्यतेऽथवा ? ॥३८॥
विससर्ज ततो योगी, देदमानन्दमेदुरम् । स तु स्वं गेहमायासीच्चिन्तयन्निति चेतसि ॥३९॥
ईदृशा अपि दृश्यन्ते, मेदिन्यां यदि मानवाः । तदाहुः सत्यमेवेदं, बहुरत्ना वसुन्धरा ॥४०॥

गत्वान्तर्दशनं तनोति शुचितां गोमुख्यकुक्षिस्थितं,
दुग्धीभूय जगद्धिनोति नयति ध्वंसं क्षुधं पाशवीम् ।
शीताद्यं दलयत्यवत्यरिगणान् प्राणान् परार्थोद्यतं,
यद्येवं तृणमप्यहो ! ननु तदा वाच्यः किमीदृग्जनः ? ॥१४॥

कृपोपकारशीलादिगुणप्रगुणपल्लवाम् । स्थानकेऽस्मिन्नधाद्वेधा, नूनं भद्रकतालताम् ॥४२॥ उक्तं च—

*" इह भरहे केवि जीआ, भिच्छादिट्ठीवि भद्दया भावा ।
ते मरिऊणं नवमे, वरिसे होहिंति केवलिणो ॥१५॥

---

*छाया– इहभरते केऽपिजीवा मिथ्यादृष्टयोपिभद्रिकाभावाः । तेमृत्वा नवमे वर्षे भविष्यन्ति केवलिनः ॥

१ अक्तं–व्याप्तम् ॥ २ पशुसंबन्धिनीम् ।

कारागारे पार्श्वनाथ-स्मरणम् ।

जनोऽथ ज्ञापयामास, गत्वा तदुदितं वचः । भार्या तु चतुराऽज्ञासीत्, देदं भूपेन रक्षितम् ॥६०॥
ततश्चकर्ष बह्वर्थं, सर्वं गेहादुपस्करम् । हस्तग्रन्थिं गृहीत्वा सा, चपला च पलायिता ॥६१॥
रुष्टो राजाऽथ लोहैस्तं, कण्ठं यावदभारयत् । तं हठाद्धारयद्भिः किं, खलत्कारच्छलोक्तिभिः ॥६२॥
कारागारे च निक्षिप्य, लुण्टितुं तस्य मन्दिरम् । प्राहिणोत्परुपानाशु, रुषा भूपः स्वपूरुषान् ॥६३॥
ददृशुस्ते च तद्धाम, काममश्रीकतास्पदम् । मूर्त्तं दौःस्थ्यस्य देहं तु, क्रीडागेहं तु तस्य वा ॥६४॥
अप्राप्तकार्यकार्यर्थाः, मुद्रयित्वा तदालयम् । गत्वा च ज्ञापयामासुस्ते हताशाः क्षितीशितुः ॥६५॥
कारागारान्तरासीनोऽध्यासीद्देदस्तु मय्ययम् । रुष्टस्तथा यथा दत्ते, पञ्चाङ्गमपि संपदम् ॥६६॥ उक्तं च—
"धनकणकाञ्चनपरिजन-तनुरूपाढ्येषु पञ्चधा लक्ष्मीः । सैव गजभूमिसहिता, सप्ताङ्गा भूभृतां भवति ॥१९॥"
श्रीस्तम्भनेशं तर्हीहामुत्रमोक्षनिबन्धनम् । शरणं समुपैमीतिध्यात्वा मन्दमुवाच च ॥६७॥
नामबिम्बोपलस्नात्रजलपूजासुमाद्यपि । त्वामाश्येष्टदं तत्किं, पार्श्व ! त्वन्महिमांस्तुवे ॥६८॥
हठोऽयं यो मयारेभे, स तवैव बलाद्विभो ! । पङ्गुको माद्यति क्षीरप्राणेनेत्युच्यते यतः ॥६९॥
तत्पीडितानां पित्रोकः !, प्राणमद्भुक्तिमुच्छिद ! । श्रीपार्श्व ! स्तम्भनाधीश !, भवतः कृपया यदि ॥७०॥
सङ्कटाद्धिकटादस्माच्छुटिष्यामि विना धनम् । तर्हि त्वामर्हयिष्यामि, सर्वाङ्गस्वर्णभूषणैः ॥७१॥ (युग्मम्)

१ पूजयिष्यामि ।

प्रत्यक्षार्पितवस्तुसंशयकरो गूढार्पितापह्नवं,
कर्त्ता लाभगृहास्तिमुख्यमसकृत्पृष्टोऽपि नो जल्पति।
लोभित्वाज्जठरेऽपि वञ्चनपरो वक्ति व्ययं
स्वल्पमप्यस्वल्पं भृशभीरुषु प्रथम इत्यादिस्वरूपो वणिग् ॥१८॥

राज्ञः रोपवचनम्।

देदस्तेदमाचख्यौ, सख्यौ सुरगुरोस्त्वयि। संवित्किंविषया नास्ति, परं सत्यमिदं ब्रुवे ॥२१॥
निधिर्यदि मया लब्धः स्यात्तत्पादौ स्पृशामि वः। वाणिज्याद्यार्जिते तु स्वे, सन्त्यसूयापराः परे ॥२२॥
शपथैरपि पृथ्वीशो, न प्रत्येति यदा तदा। दिदण्डयिषुमुर्वीशं, मत्वा देदो जगौ रुषा ॥२३॥
जानामि नृप ! निध्याप्तिच्छलाल्लक्ष्मीं जिघृक्षसि। कपर्दिकाऽपि काणैवं, शक्या दातुं न मे पुनः ॥२४॥
स्वाम्यात्तु रोचते, यत्ते कुर्यास्तदिति वादिनि। देदे तु हठानिष्ठेऽभूद्भूपालः कोपपाटलः ॥२५॥
अत्रान्तरे गृहजनः, प्रहितो भार्ययाऽर्यया। भोक्तुमाकारणायाऽगात्, साधोः साहसिनोऽन्तिके ॥२६॥
तेनाहूतो जगौ धूर्तो, गत्वेदं त्वं गृहे वदेः। शिरोर्त्तिः स्फूर्तिमत्यद्य, मद्भुक्तेरस्ति संशयः ॥२७॥
नस्यः सद्यः परं कार्यः, इति प्राकृतभाषया। श्लिष्टार्थं न तदुक्तं केऽप्यबुध्यन्त नृपादयः ॥२८॥
धनी जायेत जाल्मोऽपि, ज्ञानी किन्तु सुदुर्लभः। यतो ज्ञापितमप्यामागमं नाबोधि धर्मराट् ॥२९॥

१ ज्ञानम्। २ स्वामित्वात्। ३ मूर्खोऽपि।

योगिराजगिरं स्मृत्वा, मत्वाऽपायास्पदं श्रियम् । हित्वा लोभित्वमार्थिभ्यो, दातुं लग्नोऽथ काञ्चनम् ॥८४॥
दशनालङ्कृतास्योऽपि, दृष्ट्वा मार्गणवर्गणाम् । स त्यागरसिकश्चक्रे, नकारं नैकमप्यहो ! ॥८५॥ उक्तं च—
×" भिउडी अद्धालोअण मुच्चादिट्ठी परंमुहं वयणं । मोणं कालविलंबो, नक्कारो छव्विहो होइ ॥२०॥
ततश्चार्थिकृतश्लाघो, देदः स्वर्णौघदानतः । व्यापकं प्राप कनकगिरीति बिरुदं जने ॥८६॥

इति कनकगिरिदेदप्रबन्धः ॥१॥



देदस्य-देवगिरि-गमनम् ।

अथ देदकारित-कुङ्कुमलोलशालाप्रबन्धः ।

अन्यदा सत्पथाध्वन्यो, धन्यो धन्योघमानितः । प्राप कार्याय कस्मैचिद्देदो देवगिरीं पुरीम् ॥८७॥
भावात्तत्र गुरुं नन्तुं, जगाम काप्युपाश्रये । हर्षोत्कर्षेण सर्वर्षीन्, ननाम श्यामलान्मलात् ॥८८॥
तत्रैकं स्थानमध्यास्य, धर्मशालाविधापने । विचारं कुर्वतः श्राद्धान्, दृष्ट्वा तानप्यवन्दत ॥८९॥

---

१ दशभिर्नकारैर्योऽलङ्कृतास्यः स्यात्स याचकश्रेणिं दृष्ट्वा नकारं कुर्यादेव, अयं तु न तथा कृतवानिति विरोधः, परिहारे तु दशनै र्दन्तैरलङ्कृतास्यस्त्यागरसिकत्वान्न नकारं चकार ॥

× छाया—भृकुटीअर्धालोकन-उच्चादृष्टिः पराङ्मुखं वदनम् । मौनं कालविलम्बो नकारः षड्विधो भवति ॥

श्रीस्तम्भनजिनस्यैवं, मानयित्वोपयाचितम् । सुष्वाप स निशि ध्यायन्नुपसर्गहरस्तवम् ॥७२॥
स तदा यद्दधे ध्यानं, लीनत्रिकरणो जिने । स्यात्तद्यदैहिकाशंसामुक्तं तन्मुक्तिमाप्नुयात् ॥७३॥
विनिद्रोऽथ निशायामे, तुरीये तिमिराकुले । रक्तरत्नशिरस्त्राणतेजसा दृश्यतां गतम् ॥७४॥
[1]व्यूढोरस्कं वृषस्कन्धमाजानुगभुजार्गलम् । नीलसन्नाहभृद्देहं, गेहं तु जगदोजसाम् ॥७५॥
स्वर्णसेल्लकृतोल्लासमश्वमारूढमुज्ज्वलम् । अकस्मादग्रगं दृष्ट्वा, सुभटं स विसिष्मये ॥७६॥ त्रिभिर्वि-
शेषकम् ॥ स चोवाच त्वमुत्तिष्ठ, मत्पृष्ठे हयमारुह ।स्माह्वाऽन्यो लोहनद्धोऽहं, नेशः कर्तुं किमप्यलम् ॥७७॥
किं कर्त्ता त्वं समुत्तिष्ठेत्युक्ते भूयो भटेन सः । उत्तस्थौ यावता भङ्क्त्वा, पेतुर्लोहानि तावता ॥७८॥
ततस्तं हयमारोप्य, चचालास्खलितो भटः । क्षणाच्च यत्र तद्भार्या, तत्र मुक्त्वा तिरोदधे ॥७९॥
प्रातः पत्नी तमालोक्य, पप्रच्छ कथमागताः ? । श्रीस्तम्भनप्रसादेनेत्याख्यगद्यन साधुना ॥८०॥
यत्र तौ मिलितौ तच्च, पुरं नम्याटवर्त्यनः । प्रापतुस्तदपि त्यक्त्वा, सद्यो विद्यापुरे पुरे ॥८१॥
घटयित्वा च सौवर्णं, भासुराभरणोच्चयम् । गत्वा स्तम्भपुरे तेनाऽऽनर्च श्रीपार्श्वविश्वपम् ॥८२॥
[2]पातकान्त्यज-तत्कालगमाद्देदाङ्गमन्दिरे । चिक्षेपार्हंस्तदा [3]भूषाभाऽच्छलस्वर्णवाऽच्छटाः ॥८३॥

१ विशालवक्षस्थलम् । २ पापरूपचण्डालः । ३ भूषणदीप्तिव्याजेन स्वर्णवारिच्छटाः ॥

तां विधापयितारोऽत्र, बहवोऽपीष्टकामयीम् । सौवर्णी तु न युष्माभिरपि सा कारयिष्यते ॥१०३॥
श्रुत्वेदं दन्तिदन्ताभं, देदः स्वं भणितं चिकीः । स्वीचक्रे काञ्चनेनापि, धर्मशालाविधापनम् ॥१०४॥ यतः–
"दन्तिदन्ताविवोच्चानां, गीर्निर्गत्य न चाविशेत् । कूर्मग्रीवेव नीचानां, निर्गताऽपि विशेत्पुनः ॥२१॥"
अर्थिकोकार्यमाऽऽकार्य, गुरुभिः सोऽभ्यधीयत । कालेऽस्मिन्नार्य ! सौवर्णी, शाला वद कथं भवेत् ? ॥१०५॥
क्व तावद्द्रविणं कालुकूल्यं च पृथिविभुजाम् ? । तादृग् वा कारितं स्थानं, तिष्ठत्यग्रे नृणां कथम् ? ॥१०६॥
सान्तूर्लक्षचतुर्युक्ताऽशीतिटङ्कसहस्रिकाम् । यां चित्रशालां धर्मोकश्चक्रे हैमी न साऽप्यभूत् ॥१०७॥
उत्पद्य कलिकालान्तः, कार्यं कृतयुगोचितम् । कुर्वाणस्यान्तरायो हि, प्रायो बाधाय जायते ॥१०८॥
देदोऽवग् भगवान् ! सत्यमिदं किन्त्विष्टकामयीम् । कारयित्वा स्वर्णपत्रैर्जटयिष्यामि सर्वतः ॥१०९॥
जगुस्तं गुरवो मुग्धाग्रहमेनमयौक्तिकम् । बह्वपायाकुलार्य ! स्यात्तादृश्यपि न किं कलौ ? ॥११०॥
वारितो गुरुभिः सोऽथ, भ्रातृजस्वर्णसंज्ञया । तां कारयितुमारेभे, श्रीसङ्घानुमतः कृती ॥१११॥
अस्मिन्नवसरे तत्र, वृषभाऽयुतसंयुतः । षष्टियुक्त्रिशतीभाण्डभृतः सार्थः समागमत् ॥११२॥
भोगी श्रीमांश्च देशः स्याद्दक्षिणस्तेन हेतुना । प्रापुः सार्धं च पञ्चाशज्जात्यकेसरपौष्टिकाः ॥११३॥
व्यक्रीयन्तास्य पण्यानि, सर्वाण्येकं तु केसरम् । एवमेव स्थितं तत्र, सभ्याः ! शृण्वन्तु कारणम् ॥११४॥

प्रथमः- तरङ्गः । केसर-पौष्टिका ।

---

१ याचकचक्रवाकसूर्यम् । २ दशसहस्रयुक्तः । ३ भारवाहका वृषभाः ॥

कुङ्कुमशाला-विधापनम् ।

तेषां विचारं चाकर्ण्य, चेतसीति व्यचिन्तयत् । पूर्णं पौषधशालायाः, पुण्यं निर्मापणे खलु ॥९०॥
विपणिः सा हि साधूनामत्रैत्य ग्राहको जनः । व्रतादिपण्यं क्रीणाति, क्रमेणानन्तलाभदम् ॥९१॥
धर्मश्रुति-प्रतिक्रान्ति-यतिस्थिति-पुरस्सराः । यास्तत्र स्युः क्रियास्तज्जपुण्यपारो न विद्यते ॥९२॥
कारयित्वा ततो धर्मशालामिह महत्तराम् । दुस्तरात्तरसाऽऽत्मानं, तारयामि भवार्णवात् ॥९३॥
इति ध्यात्वा पुरस्तात् श्रीसङ्घस्याञ्जलयाचनाम् । विधेयो विदधे वाचोयुक्तीः स व्याहरन्निति ॥९४॥
प्रसादः क्रियतां मह्यामेतां पौषधशालिकाम् । विधापयाम्यहं यस्मादस्मि श्रीसङ्घकिङ्करः ॥९५॥
एकमभ्यागतोऽन्यच्च, साधर्मिकतयाधिकः । मान्यः कुमारकेदारपुत्रन्यायादहं हि वः ॥९६॥
तेषु मुख्यस्तदाचख्यौ, यूयं जल्पथ यौक्तिकम् । किन्तु सा सङ्घसत्कैव, स्यान्न त्वेकस्य कारिता ॥९७॥
यः कारयति तामेकः, स हि शय्यातरः स्मृतः । अतोऽन्नादि न तद्धाम्नः, क्वापि लान्ति महर्षयः ॥९८॥
तच्च किं मन्दिरं साध्वगम्यत्वादन्धिमन्दिरम् । यत्रान्नाद्यन्वहं वस्त्राद्यन्वब्दं लान्ति नर्षयः ॥९९॥
श्रीसङ्घकारितायां तु, तत्रस्था यतयोऽन्वहम् । कुर्युः शय्यातरं गेहमेकैकं तत्तथा वरम् ॥१००॥
इत्यादियुक्तिभिः सत्यैर्बोधितोऽपि कदाग्रहम् । न जहौ स यदा कोऽपि, कोपितात्माऽवदत्तदा ॥१०१॥
आग्रहो वस्तदैतावानर्हः कोऽपि यदीह न । तस्याः कारयिता हैमीं, तां वा कारयितुं स्पृहा ॥१०२॥

१ आज्ञाधीनः । २ न-ऋषयः ।

देदो दत्त्वाऽर्थमेकोनां, गोणीपञ्चाशतं ततः। पोषधागारदानार्थं, सुधांमध्ये व्यरोपयत् ॥१२४॥
तत्तस्यौदार्यमाश्चर्यदाय्यभूदार्यचेतसाम्। श्रुत्वा भूपोऽपि तां वार्तां, देदमाकार्य पृष्टवान् ॥१२५॥
स्वपुरीमहिमारोपप्रसन्नः सन्नमुं तदा। सच्चक्रे भूपतिः पट्टकूलद्रव्यार्पणादिना ॥१२६॥ यतः—
"सूनुसेवकशिष्याद्याः, सन्ति नैकेऽपकीर्तिदाः। दुरापास्ते तु ये तातस्वामिगुर्वादिकीर्तये ॥२४॥"
ताम्रतुल्येष्टकोत्कृष्टां, काष्ठोत्किरणहारिणीम्। हेमांशुकेसरोन्मिश्रबाह्याभ्यन्तरकुट्टिमाम् ॥१२७॥
एकोत्तरशताङ्कश्रीसङ्घसंयन्धिपादिकान्। क्षिप्त्वान्तः कारयामास मासषट्कात्ततः स ताम् ॥१२८॥(युग्मम्)

या रश्मिव्रातकाश्मीरच्छुर्यमाणमिलज्जना। जानेऽजस्रभवत्सिद्धिकन्यावरणकोत्सवा ॥१२९॥
वैमल्यं यच्चतुष्कस्याद्भुतं यत्रेभ्यसुभ्रुवाम्। छायादम्भान्निभाल्यन्ते, प्रातः पातालकन्यकाः ॥१३०॥
यावल्लगति सौवर्णं, तत्पत्रौघविधापने। तावतोऽत्र व्ययश्चक्रे, द्रव्यस्याहो! उदारता ॥१३१॥
सौवर्णी मूल्यतो वर्णान्नामतोऽपि विधाप्य ताम्। प्रमाणीकृत्य च स्वोक्तं, सतां विस्मयमातनोत् ॥१३२॥
एकपौष्टिकसत्कं तु, केसरं सारसौरभम्। तीर्थेषु प्राहिणोदर्हदर्चार्थं चाऽगमद्गृहे ॥१३३॥

॥ इति देद-कारित-कुङ्कुम-लोलशालाप्रबन्धः ॥

१ 'चुनो' इति गूर्जरभाषायाम्। २ व्याप्यमान। ३ सुवर्णस्य सौवर्णम। ४ सुवर्णपत्र। ५ निर्माप्य ॥

तस्य टङ्कद्विटङ्कादिक्रायका बहवो जनाः। न महार्घतया कोऽपि, क्रीणाति प्रचुरं पुनः ॥११५॥
तथा तु वृष एकोऽपि, रिक्तीभवति वा नवा। तेन तद्धनिकास्तत्र, विक्रीणन्ति स्थितं ततः ॥११६॥
वाणिज्यकारकास्ते तु, निस्सरन्तोऽन्यदा बहिः। असिद्धस्वफलाः सन्तो, निनिन्दुस्तां पुरीं यथा ॥११७॥
कूटकङ्कणवातोऽयमस्याः पुर्यां यदुच्यते। सर्वं भाण्डमिहायातं, समुद्रे सक्तुवद्भवेत् ॥११८॥ उक्तं च—

"केऽप्येवमेवोपगताः प्रसिद्धिं, रुणद्धि को नाम मुखं जनानाम्।
जात्यैव ये वायुभुजो विकर्णास्तान् भोगिनः कुण्डलिनो वदन्ति" ॥२२॥

यद्वा महार्घं बह्वत्र, क्रय्यं किञ्चित्पुरागतम्। आदायि कैरपि तदावेषा संभविनी श्रुतिः ॥११९॥ यतः—

"या सुप्रवृत्तिः प्रथमं प्रवृत्ता, पाश्चात्यपापैर्नहि लुप्यते सा।
शवास्थिकूटैर्निभृतं भृताऽपि, भागीरथी पुण्यतमैव लोके ॥२३॥"

इत्यादिनगरीनिन्दाश्रुतिदूनहृदा तदा। पुर्यां प्रविशता देदसाधुना तेऽभिलापिताः ॥१२०॥
किं नाक्रीयत वः पण्यमत्राऽमात्रश्रियाश्रिते। युष्माभिः सर्वपूर्वर्यां, येनैषा दूष्यते पुरी ॥१२१॥
भद्राः! समुद्रगस्रोतस्विनी सिद्धिग-जीववत्। पण्यं किञ्चिदिह प्राप्तं, नास्ति पश्चाद्गतं पुरा ॥१२२॥
तेऽभ्यधुः सत्यमेवोक्तं, भावीदं किन्तु केसरम्। अत्रानीतमविक्रीतं, पश्चाद्यादस्ति गृह्यताम् ॥१२३॥

१ इयदन्तकथा। २ सर्वनगरीश्रेष्ठा। ३ मुक्तिगतजीववत्। ४ यान् – गच्छन्।

अन्तःसौरभशोभिगर्भसुभगा लभ्या क्व सा केतकी ?, तामेकां सकलप्रकारविगताऽपत्यां तु धिक्कामिनीम् ॥२५॥"

"गुणविरहिताऽपि महिला, महिमानममानमुत्तमाल्लभते । एकस्मादङ्गभुवः, परिमलतो गन्धधूलिरिव ॥२६॥"

गङ्गापुलिनतुल्याङ्के, पल्यङ्के साऽन्यदा सुखम् । सुप्ता तुर्ये निशायामे स्वप्नमालोकयद्यथा ॥१४०॥

वेत्ति दीपो मयाऽकारि, स तु भूत्वाऽल्परुग् धुरि । गतोऽन्यौकः क्रमादासीदब्धिसीमस्फुरद्द्युतिः ॥१४१॥

विमलश्रिय· स्वप्न-दर्शनम् ।

अथ पञ्चनमस्कारमन्त्रस्मरणलो निशाम् । शेषां निन्ये विनिद्रैव, सुस्वप्नो माऽफलोऽस्त्विति ॥१४२॥

प्रातः पत्युः पुरः प्रोचे, सा तं मधुकिरा गिरा । अभ्यधायि तदा तेन, भाव्यस्मात्तनुभूस्तव ॥१४३॥

श्रुत्वा तद्वचनं रुच्यं, मुदा रोमाञ्चिता सती । बबन्ध शकुनग्रन्थिमेवमस्त्वितिवादिनी ॥१४४॥

भूयो भर्ताऽभणद्भद्रे !, क्व वा नः प्राप्तिरीदृशी । यद्गार्हस्थ्यतरुः संपत्पुष्पितः सूनुना फलेत् ॥१४५॥

दीपोऽपवरके किन्तु, सायमायतनेत्रया । यत्त्वयाऽध्यायि तेनायं, स्वप्नोऽभूदनुभूतिभूः ॥१४६॥ यदुक्तम्—

*"अणुभूअ-दिट्ठ-चिंतिअ-सुअ-पयइविआर-देवयाणूवा । सुविणस्स निमित्ताइं, पुण्णं पावं च नाभावो ॥२७॥"

दीप्राक्षी किञ्चिदप्राक्षीत्तदपि स्वप्नवेदिनम् । स चालोच्यालपच्चारुः, स्वप्नोऽयं फलमस्य तु ॥१४७॥

त्वं मातस्तनयं नूनं, जनयिष्यसि किन्तु सः । प्रदीप इव भाव्यत्र, पूर्वं वसुविवर्जितः ॥१४८॥

---

* अनुभूत-दृष्ट-चिन्तित-श्रुत-प्रकृतिविकार-देवतानुभावात् । स्वप्नस्य निमित्तानि; पुण्यंपापञ्च नाभावः ॥

अथ विमलश्री सुप्रभातप्रबन्धः ।

कान्तासीत्तस्य विमला, विमलश्रीरिति श्रुता । वयोलावण्यपुण्यादिगुणैरनुगुणात्मनः ॥१३४॥
प्रेमाधिक्यात्तयोरेकमनोवाक्करणीययोः । पार्थक्यं प्रथयामास, वपुषैव परं विधिः ॥१३५॥
प्रातरुत्थाय तीर्थेशालयपौषधशालयोः । गत्वा गृहमुपैतीयद्वेलायामन्दलीलया ॥१३६॥

देदस्य धर्मपत्न्या-दानप्रवाहः ।

ववर्ष हर्षवल्येषा, पृषद्वर्षोचितं त्विषा । गद्याणकाद्यैः स्वर्णस्य, सपादं सेरमन्वहम् ॥१३७॥ (युग्मम्)
निगदन्त्यद्ययावत्तद्वन्दिनोऽमी दिनोदये । सुप्रभातानि सभ्याशीर्वादेषु विमलश्रियः ॥१३८॥ उक्तं च—
"धनाङ्गं परिवाराद्यं, सर्वमेव विनश्यति । दानेन जनिता लोके, कीर्त्तिरेकैव तिष्ठति ॥२५॥"

॥ इति विमलश्रीसुप्रभातप्रबन्धः ॥



तयोरेवं गमास्त्यागरतयोः कतिचिद्दिनाः । परं पुत्रो न कोऽप्यस्ति, तेन चिन्ता चितायते ॥१३९॥ यदुच्यते लोकैः—
"सा धन्या धृतवंशवृद्धिरटवी श्लाघास्पदं बालका, ऽऽश्लिष्टा सा विपिनावनी प्रसविनी सा वल्लरी वल्लभा ।

१ जिनालयपौषधशालयोर्गत्वा प्रत्यागमनसमयं यावत् ॥

सानन्दपितृनिर्मीयमाणान्वहमहोत्सवः । शुक्लपक्षेन्दुवद्बालो, ववृधे स दिने दिने ॥१६१॥
कण्ठिकाकिङ्किणीमुद्रारूपेण [1]गल-पत्-करे । पितृत्यागभयात्तस्य, व्यलगत्किमु काञ्चनम् ॥१६२॥
पुण्यैः करे करिष्यामि, श्रियौ स्वर्गापवर्गयोः । इति ज्ञापयितुं मन्ये, कृतमुष्टिरभूच्छिशुः ॥१६३॥
न केवलं तदैवाभूदर्भकः प्रियपालनः । पालनप्रणयी भावी, दीनादेरग्रतोऽपि सः ॥१६४॥

पेथडस्य-लेखशाला-गमनम् ।

निजकुलकमलाया मण्डनं जन्मकालादपि जिनमुनिसेवारब्धहेवाकिचित्तः ।
अजनि [2]वसुमिताब्दः स क्रमाल्लेखशाला-करणमहमकार्षीत्तस्य देदस्तदानीम् ॥१६५॥

॥ इति युगोत्तम-गुरुश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टालङ्कारश्रीरत्नशेखरसूरि-विनयपण्डितनन्दिरत्नगणिचरणरेणु-रत्नमण्डनविरचिते मण्डनाङ्के सुकृतसागरे देदावदात-पुरस्सरश्रीपेथडोत्पत्तिकथनो नाम प्रथमस्तरङ्गः ॥१॥



१ ग्रीवायां, चरणे-हस्तेऽ-च । २ अष्टौ ।

पुत्रजन्म, अन्वर्थ-नामकरणञ्च।

पश्चाद्देशान्तरं गत्वाऽऽसादितोद्दामवैभवः। कर्ता सुकृतसंभूतयशसोद्भासितां भुवम् ॥१४९॥ (त्रिभिर्विशेषकम्)
अदरिद्रं दरिद्रं वा, द्रक्ष्यामि स्वदृशा सुतम्। इत्यवेत्य गिरा तस्य, ततः सा मुदिता हृदि ॥१५०॥
तं च दत्त्वा धनं भूरि, सार्जवा विससर्ज सा। श्रुत्वा देदोऽप्यदो देवाद्यर्चादि विदधेऽधिकम् ॥१५१॥
यथा निष्कनिधिं भूमी, शमी वा धूमकेतनम्। गर्भं रामाभिरामं सा, बिभरामासुषी क्रमात् ॥१५२॥
किं चित्रं यदि गर्भेण, सा पाण्डुरमुखी कृता। यशोभिः शोभितैः कर्ता, स दिशोऽपि दशोज्ज्वलाः ॥१५३॥
श्रीदेव-गुरु-सङ्घार्चा-दानादिविषयां तदा। नैकां सुकण्ठी सोत्कण्ठामकुण्ठामशठाऽकरोत् ॥१५४॥
सुभ्रूणामुत्तमभ्रूणादुत्तमा एव हि स्पृहाः। अन्यथात्वे तु किं ता नो, मृद्रसाद्यभिलाषुकाः ? ॥१५५॥
शुभे चाहनि पूर्णेषु, मासेषु सुषुवे सुतम्। तदा जन्मोत्सवं चक्रे, पिता विस्मापितप्रजम् ॥१५६॥
तस्य सज्जनसम्मानाऽशनदानादिपूर्वकम्। चक्रे 'पेथड' इत्याख्या, पितृभ्यां द्वादशे दिने ॥१५७॥
नामेदं पतटादित्रिवर्गैकैकाक्षरात्मकम्। त्रिवर्गव्यग्रतां तस्य, सूचयामास भाविनीम् ॥१५८॥
त्रैविध्यं जगदङ्गणप्रणयिनः सर्वस्य भावस्य यत्तस्मादुत्तममध्यमाधमतया त्रेधा पुमर्थोऽपि भोः !।
इत्यावेदयितुं दधार सुकृताधारस्त्रिवर्गादिम, द्वैतीयैकतृतीयवर्णरचनारम्यं निजं नाम किम् ? ॥१५९॥
तस्य त्रिषु पुमर्थेषु, वर्धिष्णुर्भविनाऽऽदिमः। इतीव धर्मसूचार्थः, पकारो मात्रयाऽधिकः ॥१६०॥

१ अमन्दाम्। २ पतटा आदौ येषां ते पतटादय एवंविधा ये त्रयो वर्गा इत्यादि। ३ प्रथमः। ४ त्रिषु श्लोकेषु पेथडनामसमर्थनम् ॥

क्रमेण प्रथमण्याख्या, रमणीषु मणीयिता । तस्येभ्यतनुभूः कन्या, पितृभ्यां पर्यणाय्यत ॥६॥ पञ्चभिः कुलकम् ॥

सोऽभूत् पित्रेककल्पद्रुकल्पिताशेषकामितः । दशकल्पद्रुलब्धेष्टाद्युग्मितोऽप्यधिकं सुखी ॥७॥

कालेन कियता भोगाभोगाब्धौ मग्नयोस्तयोः । पुत्रोऽभूज्झाञ्झणो नाम, धाम सौभाग्यभाग्ययोः ॥८॥

गौराङ्गं सुन्दराकारमारक्तचरणाधरम् । मरालमिव पद्मास्तं, धनिनोऽङ्केषु निन्यिरे ॥९॥

झाञ्झणस्य-पाठशाला-गमनम् ।

बाल्येऽपि बहुलां दृष्ट्वा, प्रज्ञां धारणयोद्धुराम् । सोत्कण्ठः क्षीरकण्ठस्याप्यासीद्देदोऽस्य पाठने ॥१०॥ यतः—

"अजातमृतमूर्खेभ्यो, मृताऽजातौ वरं सुतौ । यतस्तौ स्वल्पदुःखाय, यावज्जीवं जडो दहेत् ॥२८॥

रूपयौवनसंपन्ना, विशालकुलसंभवाः । विद्याहीना न शोभन्ते, निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥२९॥"

मुक्तोऽध्यापयितुं विद्याकरोपाध्यायसंनिधौ । श्रुतस्रोतस्विनीसिन्धुः, स्तोकैरेवाभवद्दिनैः ॥११॥

॥ इति झाञ्झणोत्पत्तिः प्रबन्धः ॥



पेथडस्य ।

॥ अथ पेथडपरिग्रहपरिमाण-मण्डपदुर्गप्राप्ति-कथनो नाम द्वितीयस्तरङ्गः प्रारभ्यते ॥

तत्र-झाञ्झणोत्पत्तिप्रबन्धः ।



पेथडपाणिग्रहणम् ।

अथ व्याकरणाङ्कादिश्रुताऽकूपारपारगः । गुरुणा कर्णधारेण, स चक्रे बुद्धिवेडया ॥१॥
कृतसीमन्त-वाहाङ्गप्रभाम्भोमुखपल्वला । भ्रूगुणालिक-धन्वस्थनासेषुः स्वर्जिगीषया ॥२॥
वक्त्रावासवसद्वाणी, श्रीगवाक्षायितेक्षणा । संविदम्भोहृदम्भोधिनिर्यात-रदमौक्तिका ॥३॥
सच्छायवपुरुद्याने, लोलश्रवणदोलयोः । कुण्डलच्छलनोऽन्दोलक्रीडासत्केन्दुभास्करा ॥४॥
विवेकविदुरा चित्तचोरिका शीलशालिनी । विनीतिमवनी पुण्यप्रवीणा भर्तृभाक्तिकी ॥५॥

---

१ समुद्रः । २ कृतश्चासौ सीमन्त, स एव वाहः (प्रवाहो) यस्य (अम्भस), तत् चाङ्गप्रभाम्भ, (अङ्गप्रभैव अम्भः,), तस्य मुखमेव पल्वलं यस्या सा तथा ।

३ विनीतस्य भावो विनीतिमा विनीतत्वमितियावत् तद्वतीत्यर्थः । ४ भक्तिकुशला ॥

× भोअणसमए सयणे, विबोहणे पवसणे भए वसणे। पंचनमुक्कारं खलु, सुमरिज्जा सव्वकालं पि ॥३२॥
कुदृष्ट्या दूषितात्त्वन्नात्तस्माज्जातविसूचिका । पञ्चत्वमचिराल्लेभे, सुलभं जन्मभेजुषाम् ॥१९॥ यतः—
०"सूल-विस-अहि-विसूइअ-पाणिअ-सत्थग्गि-संभमेहिं च । देहंतरसंकमणं, करेइ जीवो मुहुत्तेणं ॥३३॥"
यावदस्तोकशोकस्तद्दाहं दत्त्वा गतो गृहे । देदोऽप्यासीज्ज्वरी तावद्धिक् प्रेम क्षेमखण्डनम् ॥२०॥ उक्तं च—

देद-विमल-श्रियो स्वर्ग-गमनम् ।

[] "कंदुक्खणणं निअदेसछंडणं कुट्टणं च कढणं च । अइरत्ता मंजिट्ठा, किं दुक्खं जं न पावेइ ? ॥३४॥
❀ पिअसंगमाउ विरहो, विरहाओ दुहं दुहाउ जीअंतो । जीअंता संसारो संसारा दुग्गइनिवाओ ॥३५॥"
ततो मत्वाऽऽगतं मृत्युं, दुष्टया चेष्टया सुधीः । एकान्ते काञ्चनोपायं, पेथडायोपदिष्टवान् ॥२१॥
भावि प्रह्वस्य बह्वस्य, स्वर्णमस्मादुपायतः । ध्यात्वेति सप्तसु क्षेत्रेष्वर्थं सर्वमवप्त सः ॥२२॥
देदस्ततः कृतप्रान्त-समस्तसुकृतक्रियः । नाकिलोकमलञ्चक्रे, याचकानां सुरद्रुमः ॥२३॥

॥ इति विमलश्री-देदस्वर्गगमनप्रबन्धः ॥



छाया– × भोजनसमये शयने विबोधने; प्रवसने भये व्यसने । पञ्चनमस्कारः खलु, स्मर्तव्यः सर्वकालमपि ॥
० शूल-विप-अहि-विसूचिका-पानीय-शस्त्राग्निसंभ्रमैश्च । देहान्तरसक्रमणं करोति जीवो मुहूर्तेन ॥
[] कंदोत्खननं निजदेशत्यजनं कुट्टनञ्च क्वथनञ्च । अतिरक्ता मञ्जिष्टा किं दु.खं यन्न प्राप्नोति ॥
❀ प्रियसंगमतो विरहो विरहतो दुःखं दुःखतो जीवनान्तः । जीवनान्तात् संसारः संसारात् दुर्गति निपातः ॥

॥ अथ विमलश्री-देदस्वर्गगमन-प्रबन्धः ॥



देदजायान्यदा पञ्चम्युपवासस्य पारणे । पायसं भोक्तुमासीना, सुधानिस्यन्दसोदरम् ॥१२॥
उज्ज्वला पञ्चमी वीतदोषत्वादुज्ज्वलं तपः । अन्नमप्युज्ज्वलं तस्याः, भाव्युज्ज्वलगतेरभूत् ॥१३॥ उक्तं च–

*"इंदिय-कसायविजओ, जत्थ य पूओववास-सीलाइं । सो हु तवो कायव्वो, कम्मखयट्टा न अन्नट्टा ॥३०॥
\+ कित्तीइ मच्छरेण व, पूआसक्कारवित्तपीडाए । सुवहुंपि तवचरणं, दुग्गइगमणं पसाहेइ ॥३१॥"

तदैका मालिनी तस्याः, पुष्पमोचनहेतवे । अद्राक्षीद्धामनि प्राप्ता, द्रागन्नं क्षीरसंस्कृतम् ॥१४॥
रम्ये तु परमान्नेऽस्याः, निविष्टा दृष्टिरुत्कटा । जिघ्रन्ति घ्राण एवान्नमश्नन्तः सुधियो धुरि ॥१५॥
भुक्तेऽस्तु समयेऽवश्यं, दुष्टदृष्ट्यादिदोषहृत् । ध्येयः पञ्चनमस्कारः, पुरुषेण हितैषिणा ॥१६॥
नेमि-राजीमतीजीवपुलिन्दयुगलाग्रतः । केवलज्ञानिनाऽप्येवमादिष्टं यतिना यथा ॥१७॥

उपवास पारणे दृष्टि-क्षेपः ।

---

* इन्द्रिय-कषायविजयो यत्र च पूजोपवास-शीलानि । तदेव तपः कर्तव्यं कर्मक्षयार्थं न अन्यार्थम् ॥

\+ कीर्त्या मात्सर्येन च पूजासत्कारवित्तपीडाभिः । सुबह्वपि तपश्चरणं दुर्गतिगमनं प्रसाधयति ॥

"अकृत्वा परसंतापमकृत्वा नीचनम्रताम् । अनुत्सृज्य सतां मार्गं, यदल्पमपि तद्बहु ॥३१॥"
अस्मिंश्च समये श्रीमद्धर्मघोषाह्वसूरयः । गुरवः श्रीतपागच्छे, विजयन्ते यतेन्द्रियाः ॥३२॥
साधूनां वटका दुष्टहारिणाख्या विहारिताः । यैर्मत्वा कार्मणोपेतास्त्याजिता दृषदोऽभवन् ॥३३॥
अभिमन्त्र्यार्पितः प्रातः, पट्टको दुष्टयोषितः । विलग्नः सुतयोरन्तः, कूपातो यैरपाकृतः ॥३४॥
द्वाः पुरे क्वापि दीयेत, शाकिनीनां भिया निशि । सूरिभिः स्वयमेवाभिमन्त्र्य न स्मृतमन्यदा ॥३५॥
ताभिरुत्पाटितां पट्टिं, ततो दृष्ट्वा चतुष्पथे । ताः सूचीस्तम्भिताः कृत्वाः वाचं लात्वा च येऽमुचन् ॥३६॥
निशैकयार्हतां हृद्याः, कृत्वाऽष्टयमकाः स्तुतीः । बुधा येऽत्र बुधन्नाशु, गूर्जराधीशधीसखम् ॥३७॥
शिष्यप्रार्थनया मन्त्रस्मृतिस्तुतिविधानतः । रत्नाकरोऽकरोद्येषां, तरङ्गे रत्नढौकनम् ॥३८॥
ये देवपत्तने यक्षं, ध्यानेनाध्यक्षतां गतम् । कपर्दिनं प्रबोध्यार्हद्बिम्बाधिष्ठायकं व्यधुः ॥३९॥
दुष्टचेटक-तोषाय, श्राद्धस्यामेध्यभक्षिणः । स्त्र्याद्याकृष्टिकरं मन्त्रं, कस्यचिद् ये व्यसिस्मरन् ॥४०॥
उज्जयन्ताचले वंशजाल्यां मोहनवल्लरीम् । दृष्ट्वा परीक्षितुं क्षुल्लः, प्रेषितो यैस्तदन्तिके ॥४१॥
स च तन्मोहितो भ्राम्यन्नसितस्तां न तिष्ठति । नैति चाकारितोऽप्यन्यैस्तदाऽऽनीयत यैः स्वयम् ॥४२॥
उज्जयिन्यां निषिद्धर्षि-प्रवेशः कोऽपि योगिराट् । आकर्षोच्चाटवश्यादिपटुः साधितचेटकः ॥४३॥
विकुर्वितोन्दुरश्वाद्यैर्भापयन्नात्मनो मुनीन् । आबध्य मन्त्रशक्त्या यैरानीतो मुमुचे ततः ॥४४॥

द्वितीयः तरङ्गः ।

श्रीधर्मघोषसूरीणां-प्रभावः ।

॥ अथ श्रीधर्मघोषसूरिप्रबन्धः; गुञ्जा-गाङ्गेयसंवादश्च ॥

पेथडस्य धान्यपोट्टलविक्रयः।

तदनु व्यवसायादि-द्रव्योपायपराङ्मुखः। केवलं धातुवादस्योपक्रमं पेथडो व्यधात् ॥२४॥
परं लाभान्तरायेणाऽऽम्नाये सत्यपि साधके। उद्योगिनोऽपि गाङ्गेयगुञ्जाऽप्यासीन्न तस्य तु ॥२५॥
यद् द्युकुम्भ-द्युमाणिक्य-द्युकम्बु-द्युलतादयः। अनुकूलेऽनुकूलाः स्युर्वामे वामाश्च कर्मणि ॥२६॥
लोहौषध्यादि-सामग्रीमीलनध्मातकर्मभिः। प्रत्युत प्राप दारिद्र्यं, सुलभं धातुवादिनाम् ॥२७॥
यतो दारिद्र्यरमयोः, संवादे रमया हरौ। गेहानि याचिते दौःस्थ्यमपीति तमयाचत ॥२८॥
द्यूतपोषी निजद्वेषी, धातुवादी सदालसः। आयव्ययस्यानालोची, यस्तद्गेहे वसाम्यहम् ॥२९॥
ततो निर्वोढुमारेभे, धान्यपोट्टलविक्रयात्। वणिजां वृत्तिरेषा हि, दारिद्र्ये सत्यनिन्दिता ॥३०॥ यदुक्तम्—
"दुःस्थो राजसुतः करोत्यधिकृतिं चौर्यं वणिक् पोट्टलं, भिक्षां विप्रजनो विजातिरपरावासेषु भृत्यक्रियाम्।
इभ्यो भूषणकुप्यविक्रयविधिं भिक्षां च नीचः स्वयं, स्वान्येषां हलखेटनं च कृषिकः कर्पासकर्माऽबलः॥३६॥"
कृत्वा कापालिकं कर्म, निर्वाहं कुर्वता सता। तेनातिवाहितः कालः, कियान् दैन्यमभेजुषा ॥३१॥ यतः—

१ सुवर्णम्। २ दक्षिणावर्तिशङ्खः।

गुञ्जा-गाङ्गेय-संवादः ।

परिग्रहमितिं तेषु, स्वीकुर्वाणेषु पेथडः । वन्दितुं प्रापदाबाल्याद्देवगुर्वेकभक्तिकः ॥५२॥
तदा शीर्णपटं स्वेदाकुलं तं मलमेदुरम् । मूर्त्तं दौःस्थ्यमिवालोक्य, जहसे व्यवहारिभिः ॥५३॥
लक्षवर्षैरयं लक्षेश्वरोऽयं कोटिकाध्वजः । व्रतं न किमिदं तावद्भदन्ताऽस्यापि दीयते ? ॥५४॥
जगुः श्रीगुरवस्तेषामाकर्ण्येदमुदीरितम् । महानुभागाः ! केनापि, न कार्यः श्रीमदो यतः ॥५५॥
उच्चैः पदं समारोप्य, नरं श्रीराशु नश्यति । दौःस्थ्यऽदत्तावलम्बोऽथ, स पश्चादवरोहति ॥५६॥
मदश्च बहिरन्तर्वा, हस्तिनामेव मण्डनः । अष्टस्वेकतरोऽपि स्यात्पुंसां तु हितखण्डनः ॥५७॥ यतः—
"जाति-लाभ-कुलैश्वर्य-बल-रूप-तपःश्रुतैः । कुर्वन्मदं पुनस्तानि, हीनानि लभते जनः ॥४२॥" (प्रशम;-८०)
पेथडं प्रत्यथ प्रोचु र्धर्माशीर्वादपूर्वकम् । पञ्चमाणुव्रतं लाहि, त्वमिहामुत्र शर्मदम् ॥५८॥
सोऽवक् तेषामिदं योग्यं, येऽनर्गलपरिग्रहाः । कथं तु युज्यते पाथःपालिबन्धोपमं मम ॥५९॥
एभिरिभ्यैः समं चाद्यव्रते तल्लामि चेत्तदा । यामि हेमतुलारोह-गुञ्जेव श्यामलाऽऽस्यताम् ॥६०॥ तथाहि—
हेमाह-टङ्कच्छेदे न मे दुःखं, न दाहे न च घर्षणे । एतदेव महादुःखं, गुञ्जया सह तोलनम् ॥४३॥
गुञ्जाह—सौवर्णिकप्रिया वर्णशालिनी वृत्तसत्तमा । साकं निष्केन यत्तोल्ये, तत्तो लज्जामहं भजे ॥४४॥
हेमाह—"गुञ्जे ! गर्वं मुधा माधास्तोल्येऽहं भवता सह । निर्गम्यतेऽनले स्नात्वा, प्रमाणं ज्ञायते तदा ॥४५॥

परिग्रह-परिमाण-व्रतोपदेशः ।

दष्टा दुष्टाहिना मूर्छां, गच्छन्तस्तद्विषान्निशि । उपायविधुरं दृष्ट्वा, श्रीसङ्घमिति येऽभ्यधुः ॥४५॥
प्रातरेष्यति पुंमौलि-वर्तिकाष्ठौघबन्धिका । वल्ली विषापहा साऽहिदंशे देया प्रघृष्य मे ॥४६॥
ततस्तेन तथाकॢप्ते, पटूभूता विरागिणः । ये सर्वविकृतित्यागात्चक्रुर्जैनमतोन्नतिम् ॥४७॥
सूरयस्तेऽतिशायिनः, [1]शयशायिशिवश्रियः । विद्यापुरेऽन्यदा वर्षाचतुर्मासीमवस्थिताः ॥४८॥
तैरन्तःसभमाख्यायि, रत्नसारकथानकम् । परिग्रहेच्छापरिमित्युपरि श्रवणप्रियम् ॥४९॥
श्रुत्वा तदन्यदा लातुमारेभे धनिभिर्जनैः । परिग्रहेच्छामानाख्यं, व्रतं सर्वव्रतात्मकम् ॥५०॥
श्रुत्वा विचार्य कुर्याद्यो, विरतिं श्रावकः स हि । स्तोकाऽपि सा च विहिता, हिताय भविनां भवेत् ॥५१॥
यदुक्तम्—
"भाविना भविना येन, स्वल्पाऽपि विरतिः कृता । स्पृहयन्ति सुरास्तस्मै, स्वयं तां कर्तुमक्षमाः ॥३८॥"
अकुर्वन्तोऽपि कवलाहारमेकेन्द्रियाङ्गिनः[2] । यन्नोपवास पुण्याढ्यास्तत्त्राविरतेः फलम् ॥३९॥
सावद्यं चित्तवाक्कायैरकुर्वन्तोऽपि जन्मिनः । अनन्तकालमेकाक्षास्तिष्ठन्त्यविरतेः खलु ॥४०॥
+तिरिआ कसंकुसारा निवाय-वह-बंध-मारण-सयाइं । नेव इहं पावंता, परत्थ जइ नियमिआ हुंता ॥४१॥

१ हस्तस्थायि मोक्षश्रियः । २ एकेन्द्रियाः ॥

+ तिर्यञ्चः कशाङ्कुशाऽऽरा निपात-वध-बन्ध-मारण शतानि । नैव इह अप्राप्स्यन् परत्र यदि नियमिता अभविष्यन् ॥

वरणं मुक्तिकन्यायाः, सत्यङ्कारः शिवश्रियः । सम्यक्त्वं भवदर्भस्य, मूर्ध्नि वन्धो वुधैः स्मृतः ॥६५॥
ध्यानं दुःखनिधानमेव तपसः संतापमात्रं फलं, स्वाध्यायोऽपि हि वन्ध्य एव कुधियां नेऽभिग्रहाः कुग्रहाः ।
अश्लाघ्याः खलु दानशीलतुलनास्तीर्थादियात्रा वृथा, सम्यक्त्वेन विहीनमन्यदपि यत्तत्सर्वमन्तर्गडु[1] ॥६६॥
परिग्रहस्य क्षेत्रादेरिच्छापरिमितिव्रतम् । स्वीकारयितुमारेभे, तस्य तैः सुखहेतवे ॥६७॥ यतः—

पेथडस्य-कर-रेखा-दर्शनम् ।

"द्वेषस्यायतनं धृतेरपचयः क्षान्तेः प्रतीपो विधि; र्व्याक्षेपस्य सुहृन्मदस्य भवनं ध्यानस्य कष्टो रिपुः ।
दुःखस्य प्रभवः सुखस्य निधनं पापस्य वासो निजः,प्राज्ञस्यापि परिग्रहो ग्रह इव क्लेशाय नाशाय च ॥४९॥"
एतेन स्वीकृतेन स्याद्व्रतेन धनिदुःस्थयोः । अङ्कुशेनेव भो ! लोभोच्छृङ्खलेभो वशीकृतः ॥६८॥
अमर्यादश्च लोभाब्धिरवश्यं सर्वनाशनः । तद्वशास्मृतेः श्रृङ्गदत्तस्यात्र निदर्शनम् ॥६९॥
धनं नियमिताऽदत्तादानश्रेष्ठीव दुर्गतः । लभते जातु संतोषं, कुर्वाणो यदुदीरितम् ॥७०॥
निरीहस्य निधानानि, प्रकाशयति काश्यपी[2] । अङ्गोपाङ्गानि बालानां, न गोपयति कामिनी ॥७१॥
धनमानविधाने तु, सप्ताष्टस्पर्धकस्य ते[3] । पेथडस्य करेऽपश्यन्, रेखाः सर्वाः शुभा यथा ॥७२॥
शक्ति-तोमर-दण्डासि-धनुश्चक्र-गदोपमाः । दृश्यन्ते यत्करे रेखाः, राजानं तं विनिर्दिशेत् ॥७३॥
ध्वज-वज्राङ्कुश-च्छत्र-शङ्ख-पद्मादयस्तले । पाणिपादस्य दृश्यन्ते, यस्यासौ श्रीपतिः पुमान् ॥७४॥

---

१ निरर्थकम् । २ पृथ्वी । ३ धर्मघोषसूरयः ॥

सम्यक्त्वस्य-महिमा ।

ततो गुञ्जाविशन्त्यग्नौ, मन्ये दग्धा सती मुखे । यद्वा धिक्कारहक्काभिर्लोकानां श्यामलाऽजनि ॥४६॥

॥ इति श्रीधर्मघोषसूरिप्रबन्धः; गुञ्जागाङ्गेयसंवादश्च ॥



॥ अथ पेथडपरिग्रह-परिमाणप्रबन्धः ॥



श्रुत्वेदं गुरवोऽजल्पंस्त्वयाऽऽयोक्तं न यौक्तिकम् । सर्वः स्वस्वानुसारात्तद्गृह्णानो धन्य एव हि ॥६१॥ यतः—

"जइ बहुलदुद्धधवला, उच्छलइ धवलतंडुला खीरा । ता किं कणकुक्कसिआ, रब्बडिआ नो तडब्बडइ ॥४७॥"

त्यक्त्वा परं विचारं तद्धिताय स्वीकुरु व्रतम् । इत्युक्त्वा तं करे धृत्वा सम्यक्त्वं ददुरादितः ॥६२॥ यतः—

+"मूलं दारं पइट्ठाणं, आहारो भायणं निही । दुच्छक्कस्स य धम्मस्स, संमत्तं परिकित्तिअं ॥४८॥

पापध्वान्तभिदस्तस्य, सम्यक्त्वस्य रवेरिव । राशिवद्द्वादशश्राद्ध-व्रतान्याभोगवृत्तये ॥६३॥

हस्तग्रन्थिरिवेभ्यानां, राजधानीव भूभुजाम् । सांयात्रिकाणां फलकमिव सद्दर्शनं नृणाम् ॥६४॥

छाया—+ मूलं द्वारं प्रतिष्ठानं आधारो भाजनं निधिः । दुःशक्यस्य च धर्मस्य सम्यक्त्वं परिकीर्तितम् ॥

॥ अथ मण्डपदुर्ग-प्राप्तिप्रबन्धः ॥



पेथडस्य मालवदेश-प्रतिगमनम् ।

आजगामान्यदा वर्षाकालः कालः प्रवासिनाम् । दुर्वारवारिदासारः, सारः शस्यादिसंभवैः ॥८४॥

यत्रोद्दामतमःसमूहमलिन-व्योमाङ्गणव्याजतः, कृष्णोर्व्या जलजासनस्तत इतः खद्योतपोतच्छलात् ।
मेघग्रस्तसमस्तसूर्यमहसो बीजानि चेकीर्यते, यद्येवं न तदा शरद्यतितरां संपद्यते तत्कथम् ? ॥८५॥

तदा ग्रामान्तरादायन्नन्तराब्देन वर्षता । विष्कम्भितः पुरोपान्तमुपेतः स निशामुखे ॥८६॥

केदारानुदकैरन्यक्षेत्रेभ्यो वालितैरलम् । पूरयन्तोऽर्भकास्तत्र, निर्भीकास्तेन वीक्षिताः ॥८७॥

विस्मितोऽचिन्तयच्चित्ते, केऽमी भीमे निशामुखे । श्यामलाः शिशवः पुर्याः, बहिः कार्यपराः स्थिताः ॥८८॥

पृष्टैस्तेनाथ तैरूचे, वयं पुण्यवशंवदाः । कामाः कामाभिधानस्य, श्रेष्ठिनोऽत्र निवासिनः ॥८९॥

वदत क्वापि मे सन्ति, भोः ! कामा इति पेथडम् । पृष्टवन्तमवोचंस्ते, विद्यन्ते मालवेषु ते ॥९०॥

तदाकर्ण्य मुदा पूर्णः स आगत्य गृहं प्रगे । पिटकाक्षिप्तसर्वस्वः, प्रस्थितो मालवं प्रति ॥९१॥ उक्तं च—

१ विधाता । २ अधिकम् । ३ सूर्यतेजः । ४ प्रतिरोधितः ॥

पेथडस्य परिग्रह-परिमाण-ग्रहणम्।

स्वस्तिके जनसौभाग्यं, मीने सर्वत्र पूज्यता। श्रीवत्से वाञ्छिता लक्ष्मीर्गवाद्यं दाम्नि जायते ॥७५॥
अङ्गुष्ठेषु यवैर्भाग्यं, विद्या चाङ्गुष्ठमूलजैः। ऊर्ध्वाकारा पुनः पाणितले रेखा महाश्रिये ॥७६॥
संपदाभोगदाऽनेकरेखाढ्यकरदर्शनात्। विभाव्य भाविनी भूयस्तरे विभववैभवे ॥७७॥
टङ्कानां विंशतिशत-सहस्रादिमितिं सृजन्। निवार्य लक्षाण्याचार्यैर्ल्यकार्यत पञ्च सः ॥७८॥ युग्मम् ॥
अहो! दुःस्थेऽपि वात्सल्यं, कौशल्यं भाविवेदने। सम्यग्ज्ञानेऽपि गाम्भीर्यं, गुरोस्त्रयमनुत्तरम् ॥७९॥
लज्जितेन जजल्पेऽथ, पेथडेन भदन्त! हे। न जाने लेखितुं लक्षाः, शक्नोमि कथमार्जितुम् ॥८०॥
गुरवो जगुरायेंदं, युक्तमुक्तं परं रमा। पत्तिं पतिं पतिं पत्तिं, तत्कालं कर्तुरीश्वरी ॥८१॥
धनस्य नियमस्तस्माद्धन्यानां मुत्कलो वरम्। जातु जाते तदाधिक्ये, मनो दोलायते न हि ॥८२॥
तथेति प्रतिपद्योक्तं, गुरूणामास्थया ततः। कालं कियन्तं कष्टेन जीवन् स निरजीगमत् ॥८३॥

॥ इति पेथड-परिग्रहपरिमाणप्रबन्धः ॥



१ अङ्गीकारयामास। २ सैनिकम्।

शुभशकुन-फल-कथनम् ।

"कालदिगास्पदचेष्टा-विशेषमासाद्य खग[1]-रवादीनि ।
अशुभानि शुभानि शुभान्यशुभानि भवन्ति शकुनानि ॥५२॥"

क्षणप्रतीक्षणात्त्वेष, शकुनेन्द्रोऽपमानितः । न पूर्णफलदस्तस्माद्यत्फलं भावि तच्छृणु ॥१०२॥
सर्वस्य मालवस्याऽस्य, धनिको धनिकोटिभिः । पूज्यप्रधानो भावी त्वं, बिम्बमात्रं तु भूपतिः ॥१०३॥
श्रुत्वेदं खेदतो दध्यौ, देदभूः पश्यताऽज्ञता । जज्ञे दुरापराज्यर्द्धिस्खलनेनाद्य मे रिपुः ॥१०४॥ उक्तं च—
"पश्चत्वं ननु मूर्खत्वं, जीवितं शास्त्रवेदिता । उभयोरन्तरं ज्ञात्वा, यदिष्टं तत्तु गृह्यताम् ॥५३॥"
संसारासारभोज्यान्तराज्यं राज्यं च मे यदि । जायते कथमप्युर्वी, कुर्वे तज्जिनमण्डिताम् ॥१०५॥
यद्वाऽद्यापि विनष्टं न, किञ्चिद्यद्यस्य भाषितम् । भविष्यत्यमृषा किञ्च, भाव्येवास्योदितं तथा ॥१०६॥
विद्धो विभूषणं कर्णश्छिन्नो[2] लाक्षारसं नखः । भिन्नस्तीक्ष्णैः करः शोभां, दुर्वस्त्रा[3] कन्यलङ्कृतिम् ॥१०७॥
तापाद्याप्तः पटो रङ्गं, यथा दुःखादमी गुणम् । लभ्यन्तेऽहं तथा दुःस्थो, लप्स्येऽद्यापि न किं धनम् ॥१०८॥ (युग्मम्)
शकुनं च कलौ वस्तुप्रकाशे दीपकोपमम् । मौक्तिकान्युक्तवान्सुष्टौ, मारवस्तद्धलाद्यतः ॥१०९॥

---

१ पक्षि । २ सूचीप्रभृतिभिः स्त्रियः शोभायै करे छेदान् कारयन्तीति सौराष्ट्रादौ प्रसिद्धम् । ३ परिणीयमाना कन्या वर्णकक्षेपेण जात मलिनवस्त्रा भवति परन्तु भूषणपरिधानमपि लभते ॥

"गन्तव्यं नगरशतं, विज्ञानशतानि शिक्षितव्यानि ।
भूपतिशतं च सेव्यं, स्थानान्तरितानि भाग्यानि ॥२०॥"

कियद्भिः स दिनैः पुत्रप्रियाभ्यां परिवारितः । प्राप मण्डपदुर्गस्य, प्रतोलीमतुलश्रियम् ॥९२॥
चारुपाञ्चालिका-तुङ्गतोरणोत्किरणाञ्चिता । लङ्कास्वर्णप्रतोल्या अप्याधिक्यं याति या श्रिया ॥९३॥
प्रविशंस्तत्र सोऽपश्यद्वामतोऽहिफणोपरि । कारंकारं स्वरं दुर्गा, लास्यलीला-सुलालसाम् ॥९४॥
प्रवेशे न शिवाय स्याद्वामा दुर्गा कृतस्वरा । किं पुनः कृष्णसर्पस्य, फणोपरि निषेदुषी ॥९५॥
इति सोऽशकुनं मत्वा, नमस्कारपरायणः । प्रत्यैक्षिष्ट क्षणं कोऽपि, तदाऽगात्तत्र मारवः ॥९६॥
दृष्ट्वा शकुनमुत्कृष्टं, पेथडं च प्रतीक्षितम् । प्रतीक्षणस्य सोऽपृच्छद्धेतुमुद्धतधीबलः ॥९७॥
पेथडोऽकथयन्मध्ये, नगरं विशतः सतः । शकुनस्यानुकूल्यं मे, न, तेनाहं विलम्बितः ॥९८॥ यतः—

"न निमित्तद्विषां क्षेमो, न चायुर्वैद्यकद्विषाम् । न श्रीर्नीतिद्विषां धर्मद्विषामेतत्त्रयं तु न ॥२१॥"

मारवस्तं हसित्वाऽवग्, धिग् वैदग्ध्यमिदं तव । पाषाणीकृत्य यच्चिन्तामणीं चिन्तितवानसि ॥९९॥
प्राविक्ष्यः पुरमाहत्य, शकुनेशमसुं यदि । धृतच्छत्रोऽभविष्यस्तन्मालवानां ध्रुवं पतिः ॥१००॥
कालं पदोरधः क्षिप्त्वा, नृत्यत्येषेत्यदुष्टया । चेष्टया राज्यदा स्थानविशेषादशुभाऽपि हि ॥१०१॥ यतः—

मण्डपदुर्गे-प्रवेशे शुभ-शकुन-दर्शनम् ।

तृतीय : तरङ्गः ।

॥ अथ पेथडचित्रकलता-व्यापारप्राप्ति-प्रभृतिकथनो नाम तृतीयस्तरङ्गः प्रारभ्यते ॥

तत्र-पेथड-कृष्णचित्रकलताप्राप्तिप्रबन्धः ।



पेथड-कृत लवण-हट्टिका ।

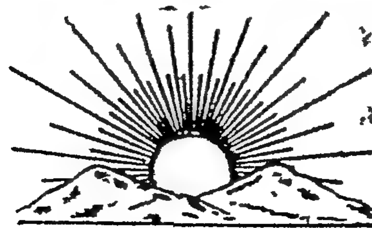
तदा तत्र पुरे राज्यं, परमारकुलोद्भवः । करोति श्रीजयसिंहदेवो देव इव श्रिया ॥१॥
आगत्य नृपतेस्तस्य, सौधाद्रि-तलहट्टिकाम् । हट्टिकां मण्डयामास, मुहूर्ते पेथडः शुभे ॥२॥
जोर्णा[1]-तैल-तल-सामुद्र-मुद्ग-हिङ्गु-हविर्मुखम् । सर्वमप्याददे भाण्डं, स्तोकस्तोकं स हट्टके ॥३॥
प्रायेण लवणस्यैव, कुर्वाणस्तत्र विक्रयम् । स लावणिक इत्याप, प्रसिद्धिं सकले जने ॥४॥
लता-सुस्थितकं[2] सर्पिष्कुम्भमाधाय मूर्द्धनि । काऽप्यागादेकदाऽऽभीरी, तस्याट्टे प्रावृताऽविका[3] ॥५॥
तयोत्तार्य महीमुक्तात् कुम्भतः सारसौरभम् । हैयंगवीन[4]मादातुं, लग्नो मापेन पेथडः ॥६॥

१ धान्यशिप' कोशे तु जोतालेति नाम दृश्यते 'जुवार' इति भाषायाम् । २ लवण– । ३ प्रावृतोऽविःकम्बली यथेति बहुव्रीहिः कः । ४ घृतम् ॥

पेथडकृत-
शाकुनिक-
सत्कारः ।

इत्यन्तः स विचार्य शाकुनिकगिर्यत्यन्तमास्थापरो,
निर्मायः कञ्चुकार्पणादिविधिना निर्माय तत्सत्कृतिम् ।
प्राविक्षद्विपुलं पुरं क्षितिवधूभालस्थलीमण्डनं,
वृत्तं तत्तिलकं तु वप्रकपिशीर्षालीमिलन्मौक्तिकम् ॥११०॥

॥ इति युगोत्तमगुरुश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टालङ्कारश्रीरत्नशेखरसूरि-
विनेयपण्डितनन्दिरत्नगणि-चरणरेणुरत्नमण्डनविरचिते मण्डनाङ्के
सुकृतसागरे पेथडपरिग्रहपरिमाण-मण्डपदुर्गप्राप्ति-कथनो नाम द्वितीयस्तरङ्गः ॥२॥



निर्गुण्डीति[1] विवेश विघ्नहतये वैश्वानरं सादारं, कर्त्तव्यो ह्युपकार एव कृतिना दग्ध्वाऽपि देहं निजम् ॥५४॥
ततोऽवग् याहि जल्पेश्च, भूपं सर्पिर्न विद्यते । साऽऽख्यद्राजा निविष्टोऽस्ति, भोक्तुं तत्कियदर्पय ॥१४॥
झाञ्झणोऽभिदधौ मुग्धे !, किं जल्पसि पुनः पुनः । न च्छटा-मात्रमप्याज्यं, रोचते यत्कुरुष्व तत् ॥१५॥
श्यामलास्या ततो गत्वा, पुरो भूपस्य चेटिका । सामन्तादिषु शृण्वत्सु, घृताभावमभाषत ॥१६॥
तदाकर्ण्य नृपो हीणो, रोषेण प्राहिणोज्जनम् । पेथडाऽऽकारणायाऽऽशु, कृत्वा भोजनमुत्थितः ॥१७॥
जनेनाऽऽकारितो भूप-कोपज्ञापनपूर्वकम् । पृथुभीः पेथडश्चित्ते, तदा चिन्तितवानिति ॥१८॥
वराके मयि भूपस्य, कोपोऽद्य किमकारणः । षष्ठे लगति वा मासे, वणिजो मश्चिकाजुषः ॥१९॥
ग्रहीता ही महेशोऽद्य, वित्तं मे कष्टमेलितम् । कीटिकासञ्चितं धान्यं, किं न खादति तित्तिरिः ? ॥२०॥
इति चिन्ताचिताचान्त-चेताः[2] पृथ्वीपतेः पुरः । भुक्त्वोत्थितोऽट्टमप्राप्तः, एवानिन्ये जनेन सः ॥२१॥
अद्यापि रे न किं सर्पिरेवं पृष्टश्च भूभुजा । आह स्म पेथडो हट्टे, तदाऽहं देव ! नाऽभवम् ॥२२॥
किन्त्वभूत्तनुभूस्तेन, न जाने नार्पि[3] तत्कुतः । तत्-श्रुत्वाऽऽकारयत्पुत्रमपि प्रेष्य जनं नृपः ॥२३॥
तदाऽध्यासीत्पिताद्याऽट्टे, हा ! सुतं किमतिष्ठिपम् । विपर्यस्यति वा काले, विनाशस्य न किं मतिः ? ॥२४॥
यतः—

राजगृहे राज्ञः पेथडेन प्रश्नोत्तरम् ।

१ नगोड नामा वनस्पतिः । २ व्याप्तचित्तः । ३ नादायि ।

उदक्तं बह्वपि न्यूनीभवत्याज्यं तु नो यदा । तदा सुस्थितकान्तः स, मेने चित्रक-वल्लरीम् ॥७॥
साकं सुस्थितकेनाज्यकुम्भं लात्वार्थतस्ततः । सोऽभूदक्षयसर्पिष्को, वपुरे ! भाग्यजागरः ॥८॥

॥ इति पेथडकृष्णाचित्रकलता-प्राप्तिप्रबन्धः ।



अथ पेथडव्यापारप्राप्ति-प्रबन्धः



राज्ञः कुरीति-प्रति झाञ्झणस्य प्रकोपः।

नित्यं चाज्यकृते भोक्तुमुपविष्टस्य भूपतेः । लात्वा कचोलकं हट्टे, तस्यागच्छति चेटिका ॥९॥
स तस्या वितरत्याज्यं, मूल्येनातुल्यसौरभम् । तच्च जेमति भूपालः, इति कालः कियानगात् ॥१०॥
अन्यदा पेथडे भोक्तुं, गते धामनि झाञ्झणः । अध्यास्त हट्टकं तावद् घृताय प्राप चेटिका ॥११॥
तस्याऽऽज्ये मार्गिते दध्यौ, झाञ्झणश्चतुराग्रणीः । कुरीतिः खल्वियं राज्ञो, यत्क्रीतं भुज्यते घृतम् ॥१२॥
तदिमां टालयिष्यामि, व्यापदागमदूतिकम् । रुष्टस्तुष्टोऽस्तु वा पश्चाद् भूपो मे गुणकारिणः ॥१३॥ उक्तं च–
"छाया मे न तथा वृथा च कुसुमस्तोमस्तथा नोन्नता, शाखाश्रीर्न च तादृशी फलभरभ्राजिष्णुता दूरतः ।

१ "इंठोणी" इति भाषायाम् ।

"कौलीनहेतु[1] मालिन्यं, निर्मलं न मलीमसे । कलङ्कीत्युच्यते चन्द्रो, न जनैराञ्जनो गिरिः ॥६०॥"
द्वित्राहयोग्यमाज्यं, स्यादग्रतोऽस्मादृशामपि । नैयद्देशाधिपस्यैक-दिनार्हमपि ते त्वहो ! ॥३६॥
जातु रुद्धेऽरिभिर्दुर्गे, स्याद्धिनाज्यादिसंग्रहम् । लग्ने प्रदीपने कूप-खननन्याय एव ते ॥३७॥
सचिवा च ये विद्यन्ते, छद्मिन्ते वेद्मि तेऽखिलाः । शृगाल-शीतरक्षार्थं, द्युम्नदायकमन्त्रिवत् ॥३८॥ उक्तं च—
"नास्ये सर्पस्य रुधिरं, न च दष्ट-कलेवरे । न प्रजासु न भूपाले, धनं दुरधिकारिणि ॥६१॥"

नृपकृत-पितापुत्रोः सत्कारः ।

दत्ते कर्त्तुं हितं राज्ञोऽहितं यश्च निषेधति । राजात्मजजनतार्थानां, कर्त्तामात्यः स तूत्तमः ॥३९॥ यतः—
"प्रतिशब्दनिभाः केऽपि, केऽपि दर्पणसंनिभाः । दीपवद्दर्शकाः केऽपि, मन्त्री कोऽप्यङ्कुशायते ॥६२॥"
युष्मत्प्रसादतोऽन्यच्च, न्यूनताज्ये न कापि मे । कार्यं चेत्तर्हि तेनैव, नौकां, वाहयितुं क्षमः ॥४०॥
बालादपि हितं ग्राह्यमिति ज्ञात्वा हिताय तत् । विधीयतां तथा न स्याद्यथा रीतिरियं नृप ! ॥४१॥
इति तस्य गिरं गुर्वीं, जाङ्गुलीमिव भूपतिः । श्रुत्वा रोष-विषोन्मुक्तस्तदा चेतस्यचिन्तयत् ॥४२॥
अस्याहो ! दीर्घदर्शित्वं, धृष्टत्वं गीः प्रगल्भता । तुर्यं वचनचातुर्यं, कस्याश्चर्यं न यच्छति ? ॥४३॥
बालोऽप्यबाल-ललितः, सिंह-स्वस्तरु-सूर्यवत् । प्रधान-पदवीयोग्यः, समं पित्रैष एव मे ॥४४॥
ध्यात्वेति क्षितिपो दत्त-चङ्गपञ्चाङ्ग-चीवरः । तौ मुद्[2]-राजिमनाश्चक्रे, सर्वमुद्राधिकारिणौ ॥४५॥

---

१ जनप्रवाद. कौलीनम् । २ मुदां हर्षाणां राजिर्मनसि यस्य हर्षोल्लसन्मना इत्यर्थः ।

"नालोकितः क्व च न कर्णपथं च नीतः, केनापि काञ्चन-पिशङ्गतनुः कुरङ्गः।
तस्य त्वचा तदपि कञ्चुकमाचकाङ्क्षत्, सीता विनाशसमये विपरीतबुद्धिः ॥१९॥"

नृपंप्रति झाञ्झणस्य निर्भयोक्तिः।

तस्मिंश्च ध्यातवत्येवं, सिंहार्भ इव निर्भयः। झाञ्झणो भूभुजा पृष्टः, सुव्यक्तमिदमब्रवीत् ॥२५॥
स्वामिन्नद्य पिता नाभूदद्दृष्टेऽभूवमहं पुनः। यत्त्वर्पितं मया नाज्यं, तत्राकर्णय कारणम् ॥२६॥
यावदुत्थाय याम्यन्तरापणं सर्पिरर्पकः। बभूव संमुखं सद्यस्तावत्त्राटकिति क्षुतम् ॥२७॥
तदाशङ्कि मया मा भूद्गरादेः पतनं घृते। प्रायो व्यग्रतयोद्घाटं, तदादेर्भाजनं हि नः ॥२८॥
जातु नाभूत्तथा तर्हि, द्वेषिणा लोभितेन चेत्। क्षिप्तं विषादि केनापि, भवेत्किं क्रियते तदा ॥२९॥
लुब्धाः शालिपयोऽर्थेषु, कीरमार्जारपूरुषाः। पश्यन्ति हि न मूद्गोल-दण्डानर्थपरम्पराः ॥३०॥
अत एव च भूपानां, पानाम्भःकलशेष्वपि। द्विष-द्विषकृतापाय-रक्षायै तालकक्रिया ॥३१॥
न विश्वसेदमित्रस्य, मित्रस्यापि न विश्वसेत्। जानास्येवं नीतितत्त्वं, तत्त्वं मा भूः प्रमद्वरः ॥३२॥
विद्वेषिणि प्रमादे हि, देहिनां देहवर्तिनि। प्रविष्टे स्वपटीं सर्पे, इव भावि शिवं कियत्? ॥३३॥
प्रभुत्वं यदि वा देव! दत्तं येनेदमीदृशम्। स एव भवतो भावी, व्यसनस्खलनेऽर्गला ॥३४॥
निर्वाहोऽवन्तिभर्तुः स्यात्, क्रीतादेव घृतादिनि। अकीर्तिस्तु दिगन्तेषु, गमिष्यति विशिष्य ते ॥३५॥ यतः—

---

१ घृतादेः। २ देव एव। ३ विशेष्यतया।

निष्करानकरोल्लोकाननेकान्निष्करः[1] स्वयम्। स्वयं सुखकरः सर्व, शेषं सुखकरं पुनः ॥५४॥
भूपं च विदधे सर्वाधिकृति-प्राप्नुवद्धनम्[2]। समग्रसरिदागच्छद्वारिं वार्द्धिमिवाम्बुदः ॥५५॥
बुद्ध्यैव स वशीचक्रे, सीमान्तोन्मत्तभूभुजः। यद्धि युद्धेऽप्यसाध्यं तद्धिया साध्यत इद्धया ॥५६॥
चण्डप्रद्योतमभयस्तमेव[3] च मृगावती। अजैषीड्डामरो भोजं, धीबलादेव केवलम् ॥५७॥
ततो ढिल्लीभ्य-भीमाङ्गभुवं वागतिगोत्सवैः। कन्यां सौभाग्यदेव्याख्यां, झाञ्झणः पर्यणाय्यत ॥५८॥

सौभाग्यदेव्या सह झाञ्झणस्य परिणयनम्।

॥ इति पेथडव्यापार-प्राप्तिप्रबन्धः ॥



अथ पेथडप्रजोपकारिता-प्रबन्धः ।



अकुब्जकीर्तिना कन्यकुब्जतोऽब्जमुखी कनी। प्रैष्यन्यदा नृपेणोद्वाहयितुं सह धीसखैः ॥५९॥
प्रधाना मालवाधीशं, प्रापुस्ते सह कन्यया। कन्योद्वाहादिवृत्तान्तं, सोत्साहाश्च न्यवेदयन् ॥६०॥

---

१ सुवर्णदाता। २ सर्वाधिकारेभ्यः प्राप्नुवद्धनं यस्य तम्। ३ चण्डप्रद्योतम् ॥

पिङ्गरुग् हेममुद्रायुक्, करकोकनदं[1] तयोः। दीप्रया मूर्तिमत्या च, श्रियाऽऽश्रितमिवाऽऽबभौ ॥४६॥

अर्हन्मतनभः स्तोकप्रभ-श्रावकतारकम्। द्वेषिध्वान्तहृता तेनोदित्वराऽर्कमभूत्तदा ॥४७॥ यतः—

+ "जिणदेवो जिणभत्तो, राया मंती व सावओ वलवं। साइसओ आयरिओ, पंचुज्जोआ इमे हुंति ॥६३॥"

सुखादिकार्थमेकैकः प्राक्पुण्यद्रु-सुमोपमः। चक्रे निष्कः प्रतिग्रामं, प्रत्यब्दं तस्य भूभुजा ॥४८॥

ततो हृष्टेन भूपेन, विसृष्टौ तौ कृतानती। तद्दत्ताश्व-वरारूढौ, चलतुः प्रति मन्दिरम् ॥४९॥

निस्वानादि-निनादिताम्बरतलं तौ मन्त्रिसामन्तकाऽमात्याग्रेसर-लोकलक्षचरणन्यक्[2]चक्रुरामण्डलम्।

सश्रीकं जयसिंहनामसचिवस्याजग्मिवांसौ जवादावासं जयदत्तजम्भजयिनौ[3] जाने विमानोत्तमम् ॥५०॥

गृहीत्वा रूप्यटङ्काष्ट-सहस्त्री जय सिंतहः। सर्व सम्मान्य संतोष्य, व्यासाक्षीज्झाञ्झणः क्षणात् ॥५१॥

एवं वचनचातुर्यात्सद्यः पेथडझाञ्झणौ। प्रापतुः प्रभु तां यद्वा नाफला कापि वाक्कला ॥५२॥ यतः—

"वपुर्वचनवस्त्राणि, विद्याविभव एव च वकारैः पञ्चभिर्हीनो, नरो नार्हति गौरवम् ॥६४॥

वागेवाऽमेयमहिमामन्दिरं नेयमिन्दिरा। स्वर्णौकःस्थः शुकः सद्गीर्वाहनं श्रीगृहं गजः ॥६५॥"

नव्याऽऽवासस्थितो मेरूपमां चक्रेऽथ पेथडः। धीवरा-धीश्वराऽऽसेव्यापार-व्यापारसागरे ॥५३॥

राजदत्तावासे पेथडस्य समहः गमनम्।

---

1 रक्तकमलम्। 2 नीचैर्भवत्। 3 इन्द्रसुत-इन्द्रौ।

छाया+ जिनदेवो जिनभक्तो राजा मंत्री च श्रावको वलवान्। सातिशय आचार्यः पञ्चोद्योता इमे भवन्ति ॥

भरतोद्ग्राहितैकैकाष्टकात इव पूर्जनाः । दोष्यन्ते हविरादानाचिरं कृतगुणा अपि ॥७४॥
विधायोपकृतीः कालमेतावन्तं गरीयसीः । स्तोकस्यार्थेऽद्य पूःपीडां, कुर्वतः श्रीर्ममापि का ? ॥७३॥ उक्तं च—

"उच्चण्डैः किरणैरतीव तरणेः सोढः प्रतापो महानङ्गारैरपि भर्जनं च तलनं तैले कटाहस्थिते ।
हंहो पर्पट ! पाटवं प्रकटयन्नीदृक् परार्थाय यद्दंष्ट्रान्तःपतितोऽसि सम्प्रति वयं स्म स्तेन धिग् लज्जिताः ॥६६॥"

कान्यकुब्ज-नृपप्रधान-शंका-निरासः ।

ध्यात्वेति चित्रकलता-ञ्चितसुस्थितकाद् घटात् । घृतेन कुल्यया तेनाऽखण्डं कुण्डमपूरयत् ॥७६॥
ततो राजाज्ञयाऽऽज्येन, मज्जितास्तुरगा जनैः । न परं वपुषा स्निग्धाः, हृदाप्यासन्नृपोपरि ॥७७॥
पिष्टातेनोपरिष्टात्तेऽत्यन्तमुद्वर्त्य वारिणा । कोष्णेन क्षालयित्वा च, मन्दुरासु बबन्धिरे ॥७८॥
दत्तं द्विजन्मनां चाज्यं, तदा तद्दृष्टपूर्विणः । कन्यकुब्जेश्वरामात्याः, साश्चर्याश्च व्यचिन्तयन् ॥७९॥
सारणी-वाहनात्कुण्डभरणाद्वाजिमज्जनात् । हैयङ्गवीनामप्येष, तुलयत्यम्भसाऽद्भुतम् ॥८०॥
तत्स्वरूपं किमप्यस्य, न सम्यगवगम्यते । इत्यन्तर्ध्यायतोऽधीशः, प्रधानानभ्यधादिदम् ॥८१॥
न दद्मस्तैलबिन्दोरप्यकार्ये व्रजितुं वयम् । कार्ये निर्गमयामस्तु, सर्पिर्मणशतान्यपि ॥८२॥
तैलाज्ययोरिव द्रव्ये, वयं पत्तेरपि व्ययम् । कुर्मोऽकार्ये न कार्ये तु, कोटयोऽपि तृणोपमाः ॥८३॥
तदन्वौदार्यचातुर्याद्यनेकगुणरञ्जितैः । कन्यां धन्यां धरेशस्तैः, शस्तैरुद्वाहितो महैः ॥८४॥

---

१ कवयः । २ पटवासकचूर्णेन ॥

घृतेन अश्व-स्नापनम्।

दत्तावतारकावासास्तिष्ठन्तः सुखमेकदा। अपश्यन्मालवेशस्य, लीलां ते मज्जनक्षणे ॥६१॥
अङ्गाभ्यङ्गे तदा तस्य, क्रियमाणे यथासुखम्। तैलबिन्दुः पपातैकस्तं ददर्श च भूपतिः ॥६२॥
तमादाय भुवोभर्ताऽभ्यानञ्ज चरणं निजम्। तच्चालोक्य प्रधानास्ते, विषण्णा इत्यचिन्तयन् ॥६३॥
कन्यायास्तत्पितुश्चास्माद्दक्षाणां चानुजीविनाम्। लाभो जामातरीदृक्षे, दृढमुष्टौ कृतेऽस्ति कः ? ॥६४॥
औदार्याद्दिव्यवल्लर्या, तुल्या कन्या नृपस्त्वयम्। कार्पण्य-पूर्णहृत्तर्हि, विवाहः कीदृशोऽनयोः ? ॥६५॥
कथं सिता-कर्करयोः, कल्पवल्ली-करीरयोः। मराली-काकयोः क्वापि, योगः सङ्गतिमङ्गति ? ॥६६॥
इति ध्यात्वा कनीदाने, भग्नोत्साहान्निरीक्ष्य तान्। ज्ञात-तत्कारणो राजा, बुद्धिमेकां व्यधाद्यथा ॥६७॥
पृथ्वीधरं जगावद्याऽपश्यं स्वप्ने सुवाजिनाम्। खर्जू-जर्जरिताङ्गानामाज्य-मज्जनतो गुणम् ॥६८॥
पृष्टोऽवक् स्वप्नविच्चैवं, कण्डूर्मुख्यार्वतां तनौ। भाविन्यादित एवातः, कार्यत्याज्य-प्रतिक्रिया ॥६९॥
प्राप्यार्कवारमेकैकवारकं सप्त सप्त भोः !। घृतेन वाहाः स्नप्यन्तां, विप्रेभ्यस्तच्च दीयताम् ॥७०॥
एवं कृते द्विजन्माऽऽज्यदानादेरनुभावतः। खर्जूरुत्पत्स्यमानाऽपि, तेषामुत्पत्स्यते न हि ॥७१॥
तेनैकं कार्यतां कुण्डं, दृषत्सन्ध्याहितत्रपु। पूर्यतां सर्पिषा तच्चानेष्यन्ति पुरपूरुपाः ॥७२॥
घटिताश्ममयं कुण्डं, प्रधानोऽथ नृपाज्ञया। आकुण्डं स्वालयात्कुल्यां, दार्षदीं[3] च व्यधापयत् ॥७३॥

---

१ मुख्याश्वानाम्। २ अश्वाः। ३ पाषाणमयीम्।

सरूप्य-
मोदकेन
साधर्मिक-
भक्तिः।

लम्भयेत्तद्यथाशक्ति, मोदकानेव बिभ्रतः। अप्राप्तपूर्व-सम्यक्त्वपरिणामानुरूपताम् ॥९१॥ उक्तं च—
"रणे कृष्णातपत्रादि वरणे कुङ्कुमादियुग्। दीक्षायां परमान्नादि, परिणामानुगा क्रिया ॥६८॥"
इत्यादिगुरुगीः श्रुत्वा, लाभं दर्शनमोदकैः। तदनन्तरमारेभे, लातुं सोऽक्षय्यसर्पिषः ॥९२॥
जननीहृदिव स्निग्धं, साधुस्वान्तमिवोज्ज्वलम्। जिनवाक्यमिव स्वादु, दलं तावदकारयत् ॥९३॥
तत्र व्ययकरः सारो, द्वात्रिंशद्वर्णिकामयः। न्यधायि पत्रे द्वात्रिंशद्वर्णः श्लोक इवोज्ज्वले ॥९४॥
स हेम-टङ्कमेकैकं, ततो दलभृतं घटम्। जगत्परिवृढौकस्सु, ढौकयित्वा दृढादरः ॥९५॥
सरूप्यटङ्कांस्तत्कुम्भान्, मूर्त्त-धर्मभृतानिव। साधर्मिक-निकेतेषु, प्रेषयामास धीसखः ॥९६॥
एवं विवेकिना कुम्भमनाः सम्यक्त्वमोदकाः। सपादलक्ष-सङ्ख्याकास्तेन धन्येन लम्भिताः ॥९७॥

॥ इति पेथडसम्यक्त्वमोदक-प्रबन्धः ॥



॥ अथ पेथड-भाग्यपरिक्षा-प्रबन्धः ॥

राज्ञः शाकंभरीशोऽस्ति, चाहमानकुलोद्भवः। प्राच्यः प्रधानो गोगादेर्नाम माण्डलिकाग्रणीः ॥९८॥
दूयते भूपसंभूतैः, स पेथडगुणस्तवैः। गार्जिभि-र्जलवाहस्य, किं न शुष्केज्जवासकः? ॥९९॥

विसृज्य तान्नृपः श्रुत्वा, घृतानुद्ग्राहणं पुनः । सत्यं मेने हविःकुल्या-वाहनं झाञ्झणोदितम् ॥८५॥
राजार्थस्वार्थलोकार्थ-कारकत्वेन भूपतिः । पृथ्वीधरस्य प्राधान्यं, प्रशशंस च संसदि ॥८६॥
प्रजा तेन सुजातेन, वितेने गुणकारिणा । स्वयशःपूर-कर्पूरसौरभैः सुभगानना ॥८७॥ यतः—

"पातकाऽवाप्तकालुष्यो, व्यापारः कर्दमायते । पुण्डरीकायते तत्र, प्रजारञ्जनतो यशः ॥६७॥"

नृपकृता पृथ्वीधर-प्रशंसा ।

॥ इति पेथड-प्रजोपकारिताप्रबन्धः ॥



॥ अथ पेथड-सम्यक्त्वमोदक-प्रबन्धः ॥



स्पष्टैः पल्यादिदृष्टान्तैः, कृत्वा ग्रन्थिभिदा विधिम् । भवाब्धौ लभते चिन्तारत्नाभं दर्शनं भवी ॥८८॥
क्रियाव्ययंकराकीर्ण, भावाज्याद् दृढतां गतम् । प्रौढोद्यापन-खण्डाढ्यं, केषांचित्तत्तु लड्डुकेत् ॥८९॥
उदारोऽपि सुधीः साधर्मिक-बान्धव-धामसु । शक्तो लम्भयितुं नैव, तन्नव्य-फलिकोपमम् ॥९०॥

१ पिष्टम् । २ लड्डुक इवाचरेत् इति लड्डुकेत् । ३ सम्यक्त्वम् ॥

नृपकृता चित्रकलता परीक्षा ।

वित्तस्योपायमायत्तत्तल्लाभं तस्य सञ्चयम् । तस्य न्यासं च तन्नाशं, न सत्यं वक्ति यद्वणिग् ॥१११॥
अताम्बूला मुखे भूषाऽमूला विश्ववशक्रिया । अजलं ज्वलनादीनां, सत्यगीः शैत्यकारणम् ॥११२॥
ततः सादरदृष्टयादि-चेष्टया दृष्टया सुधीः । तस्यादानाशयं सोऽयस्कान्तो लोहमिवाग्रहीत् ॥११३॥ यतः—

"उदीरितोऽर्थः पशुनाऽपि गृह्यते, हयाश्च नागाश्च वहन्त्युदीरिताः ।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः, परेङ्गित-ज्ञानफला हि बुद्धयः ॥७०॥"

ततोऽदः स्थाप्यतां कोशे, इत्युक्त्वाऽर्पि नृपाय तत् । महतामर्पणं श्रेयो, मार्गितादप्यमार्गिते ॥११४॥
अस्ति यथार्हतो धर्मः, कोऽर्थस्तर्हीहशैरिति । पारमार्थिकधीस्तस्मिन्, गतेऽपि न विषेदिवान् ॥११५॥
दिव्यचीराणि पञ्चापि, दश चानर्घ्यमुद्रिकाः । परिधाप्य नृपेणोच्चैः, सत्कृतः स गृहं गतः ॥११६॥
भूपो लताप्रतानौघेऽन्यदा चित्रकवल्लरीम् । परीक्षितुं प्रतिस्रोतस्तरणेन गतो नदीम् ॥११७॥
लताप्रतानमेकैकं, मुञ्चन्नम्बुनि तं यदा । मुमोच स तदा जातः, प्रतिस्रोतस्तरः फणी ॥११८॥
भीरुं स उरुफूत्कार-तरङ्गितजलो जनम् । कं नो कलिन्दकन्यौकाः, कालियाहिरिवाकरोत् ॥११९॥
प्रभूत-द्युम्नदानेन, लोभिता अपि भूभुजा । तारकास्तं तु धर्तुं न, शेकुः शङ्कितमृत्यवः ॥१२०॥
बाहौ बद्धाङ्गदं राज्ञा, दत्तं स्वं फणिजिन्मणिम् । प्रापाभ्यर्णे भटोऽथैकोऽहह्योऽभूत्तावता फणी ॥१२१॥

---

१ आगच्छद् । २ राज्ञः । ३ लोहचुम्बकः । ४ कलिन्दकन्या ओकाः गृहं यस्य सः ॥

सोऽवादीदेकदैकान्ते, यदेवं देव ! देदसूः । भूरिपूरितवानाज्यं, वृत्तान्तः सोऽवधार्यताम् ॥१००॥
श्रूयतेऽस्य गृहे कामकुम्भो वा कृष्णचित्रकः । अस्ति तस्यानुभावेनाज्यादिप्राप्तिरनर्गला ॥१०१॥
भवितारौ श्रुतावेव, त्वयैतौ न तु वीक्षितौ । तदेतद्द्वितये यः स्यात्स तवैव गृहेऽर्हति ॥१०२॥
हयहस्त्यादयो हि स्युरीहिताश्चेन्मरुद्धटः । लक्ष्मीरक्षीणतां कोशे, याति चेत्कृष्णचित्रकः ॥१०३॥
दुष्प्रापा नृप ! कृष्णचित्रकलता-स्पर्शोपल-स्वर्गसद्रत्नस्वर्णनृकुब्जिकापणमरुत्कुम्भा गिरां भूरुहः ।
धेनुः कामधुगम्बुकान्तयुगलीमुक्ताफलाम्भस्तरर्थ्याधाम-ध्वनिवेधकारि-रसयुग्दिव्य-त्रिरेखादयः ॥१०४॥
तं लातुं युज्यतेऽतस्ते, भूमौ रत्नं हि भूपतेः । न ग्रहीष्यसि चेत्तर्हि, दोषः कस्तस्य वीक्षणे ॥१०५॥
पुराऽपि लुब्धो राजाऽथ, सुतरां तद्गिराऽजनि । अन्यथाऽपि हि दग्धाग्निः, किं पुनः पवनेरितः ? ॥१०६॥यतः–

"अग्निर्विप्रो यमो राजा, समुद्र उदरं गृहम् । सप्तैतानि न पूर्यन्ते, पूर्यमाणानि नित्यशः ॥६९॥"

ततो राजा जनैः कैरप्येवमेवं यदुच्यते । तत्किं सत्यमुतासत्यमित्युक्ते देदभूर्जगौ ॥१०७॥
कामकुम्भं यदाख्यान्ति, तन्मृषाऽऽज्यघटस्य तु । अस्ति सुस्थितकं तत्र, घटते कृष्णचित्रकः ॥१०८॥
राजादेशेन मन्त्रीशः, आनाय्यादर्शयद्धटम् । राजा तु तत्पृथक्कारादिनाकार्षीत्परीक्षणम् ॥१०९॥
ततः सुस्थितकस्यैवानुभावमवगत्य सः । मौलिमाधूनयत्तस्य, सत्यवादितया तया ॥११०॥

नृपाय चित्रकलतादानम् ।

१ कामघट इत्यर्थः । २ चिन्तामणिः । ३ स्वर्णपुरुषः । ४ कल्पवृक्षः । ५ जलकान्तः । ६ वज्रध्वनि ।

सचिवः सोऽन्यदा संपत्संपृक्तः[1] प्राक्तनीं दशाम् । ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय, स्मरति स्म रमोज्झिताम् ॥१३१॥
तदा स्वात्मानमुद्दिश्य, बोधार्थमिदमब्रवीत् । रे जीव ! माऽद्य माद्य त्वमासाद्य श्रियमीदृशीम् ॥१३२॥
यतः संपद्विपच्च स्यात्कन्दुकोत्पातपातवत् । तत्र प्राक्पुण्यतः संपद्विपच्च प्राग्विकर्मतः ॥१३३॥
गर्वागमार्गलां तेन, स्वां दशां तां सदा स्मरेः । प्रौढभूपोढपूजाढ्या, पुत्री चित्रकृतो यथा ॥१३४॥
आत्मानमिति संबोध्य, पुनर्दध्यौ श्रियाऽनया । लब्धया ज्ञायतेऽभून्मे, प्राक्पुण्यस्योदयोऽधुना ॥१३५॥ उक्तं च–

"मृत्सौरभ्यमिवाम्बुसेचनमनो नेम्योरिव[2] प्रस्वनः[3], पत्रिस्तोम[4] इवाजनं[5] घनमिव श्लिष्टं[6] तडिद्विभ्रमाः ।
दीपाऽकम्पनतेव मारुतलयं[7] धूम्येव[8] धूमध्वजं, साभोगो[9] विभवोऽनुमापयति भोः ! प्राचीनपुण्योदयम् ॥७१॥"

तद्वीक्ष्ये किं ममाभाग्यात्किंचिद्विस्मरणेन वा । प्रयुक्ताऽपि न पुस्फोर, स्वर्णसिद्धिरियद्दिनम् ॥१३६॥
लप्स्यन्ते चेप्सितास्तुङ्गं, विनौषध्यो न भूधरम् । तद्व्रजाम्याकरे तासां, वतंसाभाम्बुदे[10]ऽर्बुदे ॥१३७॥
ध्यात्वेति सोऽवग् भूपाग्रे, प्रगे देव ! शिवैषिणा । त्वय्याज्यानर्पणक्रुद्धे, यात्राऽमानि मया पुरा ॥१३८॥
तदा च व्यगमद्विघ्नं, प्रसत्तिः[11] प्रत्युतापि ते । तज्जीरापल्लिपुर्यां श्रीपार्श्वमस्मि नमश्चिकीः ॥१३९॥
तेनोचे न च मिथ्यैतत्तथ्यवाग्दुग्धवार्धिना[12] । आर्ता हि कुर्वते सर्वं, तीर्थे सोऽर्हस्तु कामिकम् ॥१४०॥

पेथडकृत जिरापल्लि-यात्रा-विचारः ।

१ संपत्संयुक्तः । २ शकट चक्रयोः । ३ शब्दः । ४ पक्षिसमूहः । ५ निर्जनम् । ६ उन्नतम् । ७ पवनस्थिरताम् । ८ धूमसमूहः । ९ विस्तारयुक्तः । १० मुकुटसदृश मेघे । ११ प्रसन्नता ।१२ सत्यवचन क्षीरसमुद्रेण ॥

भूपकृत-पथडस्य महार्घ-सत्कारः ।

दुष्प्रापमपि तं प्राप्य, श्रेयःश्रीकारणं नृपः । मुधा निर्गमयामास, प्रमत्त इव पुंभवम् ॥१२२॥
दैवं रुष्टं चपेटाभिः, कमप्याहन्ति हन्त न । तां दत्ते दुर्मतिं किन्तु, यया कार्यं विनश्यति ॥१२३॥
श्लाध्यस्तद्भाग्यवानेव, न शूरो न च पण्डितः । किं वने वीरविद्वांसो, न भ्रेमुः पाण्डुनन्दनाः ॥१२४॥
पेथडस्याथ विज्ञाय, भूपो भाग्यमभङ्गुरम् । तत्पैशुन्यश्रुतेश्चक्रे, नियमं जीविताविधि ॥१२५॥
न मूलेन न मन्त्रेण, वश्यः संजायते तथा । यथा भाग्यातिरेकेण, तयोरासीन्नरेश्वरः ॥१२६॥
राजाऽऽख्यच्चार्हसि च्छत्रं, परं राज्ये न तद्द्वयम् । विनाऽतः श्रीकरी नैव, निर्यातव्यं त्वयाऽऽलयात् ॥१२७॥
ततो भूपाज्ञया मौलौ, केकिपत्रातपत्रिणम् । बन्दिनः श्रीकरी-घोरान्धकार इति तं जगुः ॥१२८॥
सौवर्ण-कलशोद्दण्डदण्ड-द्युत्तडिदञ्चितः । शिश्राय श्रीकरीदम्भात्तं समुद्रं किमम्बुदः ॥१२९॥
स्वायत्त-प्राज्यराज्यश्रीः, परमच्छत्रचामरः । स पर्णान्तारितो जज्ञे, राजैव श्रीकरीशिराः ॥१३०॥

॥ इति पेथडभाग्यपरीक्षा-प्रबन्धः ॥



१ पेथड झाञ्झणयोः । २ मयूरपिच्छमय च्छत्रम् ।

अथ यद्भाव्यमासीत्तत्कर्त्ता नातः परं पुनः । कृतं यच्च व्ययिष्यामि, तत्तीर्थेष्वेव काञ्चनम् ॥१५३॥

सोऽथ पापभियाऽन्यस्मै[1], दानं[2] च स्वेन[3] निर्मितिम् । सिद्धे र्न्ययमयद्धेम्नो[4], यावज्जीवं पुरोऽर्हतः ॥१५४॥

त्यक्तां श्रुत्वाऽतिसावद्यां, रैसिद्धिमपि मन्त्रिणा । त्यज्यतां व्यवसायादि, तादृक्षमपरैरपि ॥१५५॥

जायन्ते हि तिल क्षौद्र लाक्षादि व्यवसायिनः । अत्र निष्पङ्क्तयो भूत्वाऽमुत्र नारकपङ्क्तिगाः ॥१५६॥

अथ कृतलघुतीर्थयुग्म-यात्रः, सुकृतिषु मण्डनमेत्य मण्डपं सः ।
उपरि निहित-तीर्थनामकं तत्कनकमतिष्ठपदास्पदे सुगूढे ॥१५७॥

पेथडकृत-सुवर्ण सिद्धि-अकरण-नियमः ।

****

॥ इति युगोत्तमगुरु-श्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टालङ्कार-
श्रीरत्नशेखरसूरिविनेयपण्डितनन्दिरत्नगणि-चरणरेणुरत्नमण्डन-विरचिते मण्डनाङ्के
सुकृतसागरे पेथडचित्रकलता-व्यापारप्राप्ति-प्रभृतिकथनो नाम तृतीयस्तरङ्गः ॥३॥

****



१ परस्मै । २ अर्पणम् । ३ आत्मना करणम् । ४ नियममकरोत् ।

प्राप्य राज्ञस्ततोऽनुज्ञां, प्रस्थितः सपरिच्छदः। जीरापल्यां जिनं नत्वाऽऽरुरोहार्बुदभूधरम् ॥१४१॥
देवांस्तत्रापि वन्दित्वा, भ्रामं भ्रामं च भूधरम्-औषधीर्मेलयामास, पुष्पाद्यैरुपलक्षिताः ॥१४२॥
तद्रसैः कल्पितालेपां, क्षुरीं क्षिप्त्वाऽऽशुशुक्षणौ। चक्रे स स्वर्णमर्णस्वियोगाद्वा जायतेऽखिलम् ॥१४३॥
शिखि-शैत्याश्म-हेमत्व-नीरोच्चारोहणादयः। धनधान्यादयो धर्म-स्वर्गाद्या अपि योगतः ॥१४४॥
अभाग्यायोऽर्गलाभङ्गं, निर्धार्य सचिवस्ततः। लोहमानाययामास, प्रेष्य स्वं मण्डपे जनम् ॥१४५॥
झाञ्झणश्च बहु प्रैषीत्, भृत्वाऽयःकरभीरभीः। भूपते-र्घटयिष्यन्तेऽस्त्रादीनि त्वविदज्जनः ॥१४६॥
तज्ज्ञात्वाथ क्वचिद्दूरे, स्थाने स प्राप धीमताम्। पुरुहूतः सहाहूत-सप्ताप्तस्वाप्त-पूरुषः ॥१४७॥
मेलयित्वौषधीयूषांस्तदभ्यङ्गपु-रस्सरम्। सप्तभिस्तदहोरात्रैरस्वापः स्वर्ण्यचीकरत् ॥१४८॥
भृत्वा तेन पुनः सर्वाः, करभीः सतरस्विनीः। पश्चादचालयद्रक्षा-हेतुसादिपदातिकाः ॥१४९॥
तेन चादीश्वरं नन्तुं, चैत्ये चैत्येत्यचिन्तयत्। धिग् मां कनकलोभेन, बाढषड्जीवघातिनम् ॥१५०॥
हेयं त्यक्तुमशक्यत्वेऽप्यतिसावद्यमुत्तमैः। सुत्यजं तत्तु निर्माय, निरयेऽपि न मे स्थितिः ॥१५१॥
सुश्रद्धालोः सपादं चेद्धर्मस्याहुर्विंशोपकम्। ईदृक्कर्मकृतां तर्हि, स्वप्नेऽपि सं न मादृशाम् ॥१५२॥

---

१ वह्नौ। २ मेघयोगात्। ३ अभाग्यलोहार्गला भङ्गम्। ४ मतिमतामिन्द्रः। ५ ओषधीरसान्! ६ गतनिद्रःपेथडः। ७ स्वर्णमकारयत्। ८ सवेगाः। ९ च एत्य-आगत्य। १० सपादविंशोपको धर्मः 'सवाविसो' इति भाषायाम्॥

प्रधानस्य ददे गुर्वागम-वर्धापनीं यदि । तल्लभेऽनर्गलं द्रव्यमिति लोभात्ततोऽचलत् ॥७॥
अहोरात्रेण पद्भ्यां चोल्लङ्घ्य षोडशयोजनीम् । प्राप्तो मण्डपमभ्येत्यः पेथडं सोऽब्रवीदिदम् ॥८॥
काष्टमप्यगुरुं[1] वह्निर्दहतीति वरं गुरुम् । श्रितोऽसि धीसखाधीश !, त्वमिहामुत्रशर्मदम् ॥९॥
धन्यास्ते स्वगुरूणां च, शुद्धि-श्लाघाभिधादिषु । श्रुतेषु ये मुदा दद्युरस्तोकं पारितोषिकम् ॥१०॥
गुरुर्माता पिता दीपः, पोतोऽप्येतेन हेतुना । नोपायोऽन्यस्तदानृण्ये[2], प्रकारं हीदृशं विना ॥११॥
तत् त्वं वर्धाप्यसेऽद्य श्रीधर्मघोषाह्वसूरयः । प्रौढैर्युष्माकमाकृष्टाः, पुण्यैः पादानवाधरन् ॥१२॥
प्रधानोऽपि तदाकर्ण्याकस्मात्कर्णरसायनम् । हिरण्यरसनां तस्मै, दन्तस्थानीयहीरकाम् ॥१३॥
पट्टकूलानि पञ्चाश्वमृद्धं ग्रामं च तं[3] ददौ । सत्वरस्तदनूत्तस्थौ, समं सामन्तकादिभिः ॥१४॥
जनांश्च प्रचुराश्चर्या प्रवेशोत्सव-सज्जिकाम् । विधापयितुमादिश्य, जगामोपनृपं गृहात् ॥१५॥
प्रधानश्चाभ्यधाद्राज्ञः, श्रीगुर्वागमनोत्सवम् । राजाऽपि चामरच्छत्र-वादित्रादि समार्पिपत् ॥१६॥
चामरैः पट्टकूलैस्तन्न्यस्तमुक्ताफलादिभिः । स्वर्णकचोलकस्थाल-दर्पणादर्शकादिभिः ॥१७॥
कदलीकेतकीपुष्प-पद्माद्यैश्च पुरे पुनः । तोरणत्रिशती साग्रा, त्रिषष्ठ्या साध्ववन्ध्यत ॥१८॥
दूरादाकारयन्तः किं, लोकानालोकितुं महम् । वातोध्दुताः श्रियां मूलैर्दुकूलैः सज्जिता ध्वजाः ॥१९॥

गुरोरागमन-निवेदकाय-दानं,-गुरुदेव प्रवेशोत्सवश्च ।

---

१ अगुरुं-गुरुरहितं पक्षे कृष्णागुरुं । २ गुरोरनृणीभवने । ३ यत्र स वसति तम् ॥

॥ अथ पेथडकारित-चतुरशीतिप्रासादस्थानादि-कथनो नाम चतुर्थस्तरङ्गः प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र-अथ पेथडकारित-श्रीधर्मघोषसूरि-प्रवेशोत्सवप्रबन्धः ॥



श्रीधर्मघोषसूरीणां मण्डपं प्रति प्रयाणम् ।

पञ्चलक्षाधिका तस्य, व्यापारं कुर्वतः सतः । तत्कालस्फुरितस्वर्ण-सिद्ध्या च कमलाऽमिलत् ॥१॥
पदावाप्ति-कुसंसर्ग-सामग्रीविगमादिषु । भवन्ति विरला एव, धर्मकर्मसु कर्मठाः ॥२॥
ततश्च मा व्रतं भाङ्क्षीदित्यवन्तिषु सूरयः । प्रापुः श्रीधर्मघोषाख्याः, श्रुत्वा तस्यातिवैभवम् ॥३॥
नूनं ते धन्यमूर्द्धन्यास्ते श्रेयःश्रीनिकेतनम् । अन्तः प्रतिफलन्ति श्रीगुरुहृद्दर्पणस्य ये ॥४॥
विहरन्तश्च ते जग्मुरेकं ग्रामं दिनात्यये । तत्रास्ति माधवो नाम, मागधो वदतां वरः ॥५॥
स्थितेषु तेषु तां रात्रिं, सोऽश्रौषीदिति लोकतः । गुरवोऽमी प्रधानस्य, गच्छन्तः सन्ति मण्डपम् ॥६॥

१ मन्त्रिपदप्राप्तिः । २ प्रतिविम्बतां यान्ति ।

गुरोरग्रे पेथडस्य कृतज्ञता-दर्शनम् ।

कल्पिताकाल-सन्ध्याभ्रैः पञ्चवर्णाश्रितैः पटैः । अकार्यन्त च सच्छायाः, द्वेधाऽप्यापण-वीथयः ॥२०॥
नासानोदकसौरभ्य-चन्दनोदकवर्षणैः । छट्यन्ते स्म जनैर्मार्गाः, समारचित-शोधिताः ॥२१॥
किं बहूक्त्या श्रियाऽऽढ्यं तत्तदाशङ्कीक्षकैरिति । निरालम्बा द्युपूः स्थातुमशक्तोदतरद् भुवि ॥२२॥
श्लाघ्येऽथाह्नि पैरोलक्षाभ्येतभूपादिमानवम् । अश्वारूढध्वनद्वाद्यस्वरास्वीकृत-तानवम् ॥२३॥
जनतारङ्गकाजस्र-नर्तकीनृत्तसत्तमम् । बन्दिनां विरुदोच्चारै, रोमाञ्चित-नरोत्तमम् ॥२४॥
नानाविधेभ्यः सौधेभ्यः, आयद्घर्मापनोद्धुरम् । श्रीकर-श्रीकरीच्छत्र-चामरोद्दामडम्बरम् ॥२५॥
सर्वचेतश्चमत्कारि, सङ्घार्चाद्यार्जितस्तवम् । प्रधानः कारयामास, श्रीगुर्वागमनोत्सवम् ॥२६॥
चतुर्भिः कलापकम् ॥

जीर्णटङ्कसहस्राणां, कृत्वा द्वासप्तते र्व्ययम् । आगत्य गुरुपादान्ते । कृतज्ञोऽथ जगाविदम् ॥२७॥
प्रक्षाल्याक्षत-शीतरश्मिसुधया गोशीर्षगाढद्रवैर्लिप्त्वाऽभ्यर्च्य च सारसौरभ-सुरद्रूत्थप्रसूनैःसदा ।
त्वत्पादौ यदि वावहीमि शिरसा त्वत्कर्तृकोपक्रिया-प्राग्भारात्तदपि श्रयामि भगवन्नापर्णतां कर्हिचित् ॥२८॥
यतः—

* "संमत्तदायगाणं, दुप्पडियारं भवेसु बहुएसु । सव्वगुणमेलियाहि वि, उवयार-सहस्सकोडीहिं ॥७२॥"

१ स्वर्नगरी । २ लक्षाधिकसम्मुखागत–। ३ अनङ्गीकृतस्तोकत्वम् ४ आगच्छत् । ५ अपर्णतां ऋणरहितताम् ॥

❀ सम्यक्त्वदायकानां दुष्प्रतिकारं भवेषु बहुकेषु । सर्वगुणमेलिताभिरपि उपकारसहस्रकोटिभिः ॥

मा भूवमनृणश्चाहं, यत्त्वया ऋणिनो मम । [1]भुजिष्यादितया योगो, भवेच्छेषभवेष्वपि ॥२९॥
पुत्रमित्र-वणिक्पुत्रकलत्र-भ्रातृसेवकाः । पत्नीयान स्नुषा-शिष्यादयश्च प्रागृणाद्यतः ॥३०॥

॥ इति पेथडकारित-श्रीधर्मघोषसूरिप्रवेशोत्सव-प्रबन्धः ॥



गुरोरग्रे पेथडस्य स्वात्मनिवेदनम् ।

॥ अथ पेथडनिरहंकारता-प्रबन्धः ॥



इत्याद्युक्त्वा गतो गेहं, नन्तुं च प्रत्यहं व्रजन् । श्रीगुरूनन्यदैकान्ते, प्राञ्जलिः स व्यजिज्ञपत् ॥३१॥
प्रभो ! परिगृहीतान्मेऽधिकं भूर्यमिलद्धनम् । तदादिशत तस्य क्व, व्ययः श्रेयस्करो मम ॥३२॥
तमूचुरथ ते पुण्यरथ-सारथयः शृणु । श्रीवानरी स्थिरा तावन्नाऽ[2]गौरितरुषु क्वचित् ॥ उक्तं च—
"उषिता वासकं संपत्तत्किं रे ग्राम्य ! गर्वितः । पुनः पुनरुपैति द्यो[3]सिन्धुर्मध्येऽलसस्य किम् ? ॥७३॥"

१ सेवकादितया । २ गृहिवृक्षेसु । ३ स्वर्गङ्गा ।

व्यापारिणां तु भूपभ्रू-पल्लवान्तावलम्बिनी । श्रीः पतन्ती सती कालं, कियन्तं लगयिष्यति ? ॥३४॥
तेन व्ययः श्रियः श्लाघ्यः, प्रासाद-प्रतिमादिषु । [1]यत्तज्ज-सुकृतेयत्तां, केवलं वेत्ति केवली ॥३५॥ यतः—
"काष्ठादीनां जिनावासे, यावन्तः परमाणवः । तावन्ति वर्षलक्षाणि, तत्कर्त्ता स्वर्गभाग भवेत् ॥७४॥"
अत एव हि पद्मेन, चक्रिणा जननीमुदे । प्रत्यहैकैक-निष्पन्नचैत्याल्या भूरभूष्यत ॥३६॥

मण्डपस्थ-शत्रुञ्जया-वतारचैत्य-वर्णनम् ।

क्ष्माभृत्तुराषाट् षट्त्रिंशत्सहस्राङ्केन सम्प्रतिः । नव्यानुर्व्यङ्गनाहारान्, विहारान्निरमीमपत् ॥३७॥
कुमारपालः क्ष्मापालो, विमलो दण्डनायकः । श्रीवस्तुपालो मन्त्री चेत्यादयश्चैत्यकारकाः ॥३८॥
द्रविणमबला-लीलालोलद्विलोचन-चञ्चलं, बलमविकलं शर्म[3]पाझम्पा-निपातपरिप्लवम् ।
भवति भविनामायुर्वायु-प्रकम्पितपङ्कजच्छदजलचलं तस्मादेषां फलं खलु गृह्यताम् ॥३९॥
श्रुत्वा गुरुगिरं पृथ्वीधरोऽथ पृथुपुण्यधीः । चैत्यं न्यस्ताद्यतीर्थेशं, द्वासप्ततिजिनालयम् ॥४०॥
शत्रुञ्जयावताराख्यं, रैदण्ड-कलशाङ्कितम् । द्रम्माष्टादशलक्षाभिर्मण्डपान्तरचीकरत् ॥४१॥ युग्मम् ॥
बिभ्रन् मण्डपमुद्दण्डं, कोटाकोटीति विश्रुतम् । द्वासप्ततिं च रैदण्ड-कुम्भान् भाराष्टकात्मकान् ॥४२॥
शत्रुञ्जये श्रीशान्त्यर्हच्चैत्यमत्यक्षिशैत्यदम् । [4]ॐकारे चैकमुत्कृष्टतोरणाङ्कमरीरचत् ॥४३॥ युग्मम् ॥
भारतीपत्तने तारापुरे दर्भावतीपुरे । सोमेशपत्तने वांकि-मान्धातृपुरधारयोः ॥४४॥

१ तदुत्पन्नपुण्य-प्रमाणम् । २ राजेन्द्रः । ३ विद्युत् । ४ मालवीयोङ्कारनगरे ॥

देवगिरी-वर्णनम् ।

नागह्रदे नागपुरे, नासिक्यवटपद्रयोः । सोपारके रत्नपुरे, कोरण्टे करहेटके ॥४५॥
चन्द्रावती-चित्रकूटचारूपैन्द्रीषु चिक्खले । विहारे वामनस्थल्यां, ज्यापुरोज्जयिनीपुरोः ॥४६॥
जालन्धरे सेतुबन्धे, देशे च पशुसागरे । प्रतिष्ठाने वर्धमानपुर-पर्णविहारयोः ॥४७॥
हस्तिनापुर-देपालपुरगोगपुरेषु च । जयसिंहपुरे निम्बस्थूराद्रौ तदधोभुवि ॥४८॥
सलक्षणपुरे जीर्णदुर्गे च धवलक्कके । मकुड्यां विक्रमपुरे, दुर्गे मङ्गलतः पुरे ॥४९॥
इत्याद्यनेकस्थानेषु, रैदण्ड-कलशान्विताः । चतुरङ्काधिकाशीतिः, प्रासादास्तेन कारिताः ॥५०॥
सप्तभिः कुलकम् ।

भव्याभिमन्त्रणं स्वश्रीन्युञ्छनं कलि-तर्जनम् । मोक्षाध्वदर्शनं वा किं, ते कुर्वन्ति चलध्वजाः ॥५१॥
प्रासादस्तेषु चैकोऽभूद्दिव्यो देवगिरीपुरि । स यथाऽकार्यताऽऽर्यास्तं प्रबन्धं श्रृणुताऽधुना ॥५२॥
अस्ति हस्तिमदासार-सौरभोद्गारिगोपुरम् । भूरिभिर्मतयाऽन्वर्थनाम देवगिरीः पुरम् ॥५३॥
प्राकार-परिखारामलेखाभिः परिवेष्टितम् । एकतानाः स्मरन्ति श्रीबीजं यदरयः पुरम् ॥५४॥
दन्ध्वनद्द्वादशातोद्य-सहस्रत्रासिताऽहितैः । अन्तःसंग्रामशोभार्थी-भूतशस्त्राद्युपस्करः ॥५५॥
मुक्तायुग्मं चित्तचौरी-स्त्रीरश्वः कष्टभञ्जनः । चन्दनं च द्विपश्चाशामिति रत्नचतुष्कवान् ॥५६॥

१ भोः श्रेष्ठजनाः ! । २ प्रचुरस्वर्णतया । ३ पक्षे मेरुपर्वतः । ४ पंक्तिभिः । ५ वैरिः ।

षट्पञ्चाशन्निष्ककोटिरशीत्यश्वसस्त्रकः । तत्र श्रीरामभूपोऽभूद्द्वादशेभसहस्त्रयुक् ॥५७॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
हेमादिरभवद्भूरिहेमादिस्तस्य धीसखः । नापि कार्पण्यनो येन, स्वमंहोऽप्यर्थिनामहो ! ॥५८॥
द्विजानां तत्र साम्राज्यमेकच्छत्रं तदाऽजनि । जैनं कारयतश्चैत्यं, वारयन्ति बलेन ते ॥५९॥
वार्तयाऽऽकर्ण्य तद्दध्यौ, सुदेदं देदनन्दनः । पुरि वज्रिपुरीवत्सा, मिथ्यात्वध्वान्तिनी परम् ॥६०॥
यथा दीपः कुहूध्वान्ते, सुधान्धुर्लवणाम्बुधौ । तथा नीरन्ध्र-मिथ्यात्वे, चैत्यं स्यात्तत्र कारितम् ॥६१॥
तद्यथा कथमप्यत्र, विहारः कार्यते यदि । प्रभूतः स्यात्तदा लाभोऽर्हद्‌दृष्टेश्च प्रभावना ॥६२॥
चैत्यादिकारिणोऽन्येऽपि, ये भावं बिभ्रतीदृशम् । त एवागण्यपुण्या न त्वन्यथाचित्तवृत्तयः ॥६३॥ उक्तं च–

देवगिरौ चैत्यकरणार्थ विचारणा ।

❀ "पाएणणंतदेउल-जिणपडिमा कारिआउ जीवेणं । असमंजसवित्तीए, नहु सिद्धो दंसणलवो वि ॥७॥"
पुनर्दध्यौ दधे तर्हि, प्रेम हेमाद्रिना समम् । यथा तत्प्रेरणेनार्थः सिद्ध्यत्येप नृपान्मम ॥६४॥
न भूरिभिरपि स्वर्ण-माणिक्यहयहस्तिभिः । शक्यः सर्वाङ्गपूर्णश्रीस्तावत्तोषयितुं नृपः ॥६५॥
न प्रधानमसंतोष्य, न्याय्यं राज्ञोऽपि तोषणम् । न द्वार्बिम्बमनभ्यर्च्य, पूज्यते मूलनायकः ॥६६॥

१ अंहः पापः । २ अमृतकूपः । ३ युक्तम् ।

छाया–❀ प्रायेणानंतदेवकुल-जिनप्रतिमा कारिता तु जीवेन । असमञ्जसवृत्त्या-न खलु सिद्धो दर्शनलवोऽपि ॥

पेथडकृत-सत्रागारस्य वर्णनम् ।

सत्रं तन्मण्ड्यते तत्र, हेमादेर्नाम चोच्यते । लोके च प्रासुकं श्रुत्वा, तद्यशः स्वं स तुष्यते ॥६७॥
एवं च तोषणं तस्य, पुण्यं दानोद्भवं च मे । माकन्दसेक-पितृतृप्त्यादिनीत्या द्वयं भवेत् ॥६८॥
ध्यावा पृथ्वीधरेणेति, प्रीणिताध्वग-धोरणिः । ॐकारनगरे सत्रागारं स्फारममण्ड्यत ॥६९॥
सज्जनास्तत्र कार्यन्ते, मज्जनान्युज्ज्वलैर्जलैः । संपाद्यन्ते च पाद्यानि, प्राकृतानां नृणां कृते ॥७०॥
उपसत्रं विहारे च, कारयित्वाऽर्हदानतिम् । सर्वे साधर्मिकीभूताः, भोज्यन्तेऽहो ! विवेकिता ॥७१॥
पक्वान्नानि बहूनि खण्डखचिता मण्डा अखण्डोज्वलः, शालिर्दालिरुपात्तपीतिमगुणा नासानिपेयं घृतम् ।
शाकानि प्रचुराणि पित्तशमितारम्भाः करम्भा दधि, स्निग्धं वारि लवङ्ग-सङ्गसुरभि स्वैरं नृभिः स्वद्यते ॥७२॥
सकर्पूराणि पूगाणि, नागवल्लिदलैः समम् । दीयन्ते दिव्यखट्वाश्च पश्चान्निद्रादिहेतवे ॥७३॥
स्वादुभोज्याः सुखस्वापास्तत्रायाताः प्रवासिनः । स्ववधूमातृहस्तानां, स्वधाम्नां च स्मरन्ति न ॥७४॥
पृच्छतां तु पुरो नाम, हेमादेरेव कथ्यते । एवं सोऽवाहयत्सत्रं, तत्र यावत्त्रिहायनीम् ॥७५॥
भट्टप्रभृतयो भुक्तप्रीता देवगिरीं गताः । हेमादिमादरादेवं, तुष्टुवुश्च त्रिवत्सरीम् ॥७६॥
यथा—ॐकारं पुरमालवालवलयं सत्रं धरित्रीजनप्रेयस्तत्र पवित्रबीजति यतिव्यूहेन हेयं परम् ।
तस्माज्जातवती वितत्यकविताकुल्याभिराभिस्तवाऽतुल्या कीर्त्तिलताद्यमण्डपमिव ब्रह्माण्डमारोहति ॥७७॥

---

१ अकृताऽकारितम् । २ पादार्हाणि जलानि । ३ त्रिवत्सरीम् । ४ निष्पन्ना ।

इत्यादि वर्णनं नित्यमसच्छन्दकसौदरम्[1] । शृण्वता चिन्तितं चित्तेऽन्यदा हेमादिना यथा ॥७८॥
कृपणस्याब्जभृङ्गालीर्विना गालीमयाऽर्थिनाम् । न दत्तं जन्मतोऽप्यन्यत्तत्किं सत्रं वदन्त्यमी ॥७९॥
वक्तीदं कश्चिदेकश्चेज्जातु तज्जायते वृथा । लोकाः कालमियन्तं तु, नेयन्तोऽसत्यवादिनः ॥८०॥
ध्यात्वेत्येकं जनं प्रैषीदोङ्कारे तद्विलोकितुम् । तत्र गत्वाऽऽगतो ज्ञातं, स च संबन्धमित्यवग् ॥८१॥
सर्वस्वादुरसे तत्र, सत्रे या भोज्यमत्ति सा । जाने जिह्वा रसज्ञाऽन्यारसनाद्[2]रसनोच्यताम् ॥८२॥
न कश्चिद्यात्यसन्तुष्टो, नावज्ञातान्यभोजनः । नाकृत त्वत्प्रशंसश्च, भोक्तुं तत्रागतो जनः ॥८३॥
द्रम्माणां तत्र कोट्येका, सपादाऽभूत्तवेयता । यशःपुण्ये पुनर्मन्ये, कोटिकल्पान्तवर्त्तिनी ॥८४॥
सिक्तेऽथान्तःश्रवः[3]कुल्यागतैतद्वचनाम्भसा । हेमादेरुदगादाशु क्षेत्रे[4] रोमाङ्कुरोत्करः ॥८५॥
गत्वोङ्कारं ततः पृष्ट्वा, सम्यक् सत्राधिकारिणः । ज्ञात्वा पृथ्वीधरं सत्रवाहकं चेति सोऽस्तवीत् ॥८६॥
पुण्यवत्याः स्त्रियस्तस्याः, कुक्षेर्याम्यवतारणे । पृथ्वीधर इति ख्यातं, पुंरत्नं जनितं यया ॥८७॥
वरं सा युवती गर्वं, धत्तां पुत्रवती सती । पृथ्वीधरसदृग् यस्याः, सूनुर्लोकोत्तरो गुणैः ॥८८॥
ख्यापयन्ति परस्वेन, स्वनाम प्रचुरा नराः । स्वकस्वेन परख्यातिकरः पृथ्वीधरः परम् ॥८९॥
स्तुत्वेत्यन्तर्गतो दुर्गं, स्वर्गपूर्गञ्जिगौरवम् । मिमेल देदजस्याथ, सच्चक्रे सोऽपि तं मुदा ॥९०॥

पथिक कृता सत्रागार प्रसंसा, तत्श्रुत्वा हेमादेर्मनसि महदाश्चर्यम्।

१ असत्यप्रायम् । २ आस्वादनात् । ३ कर्णः । ४ शरीरे ।

तं च हेमादिराचख्यौ, युष्माभिः सत्रमीदृशम् । मन्नाम्नाऽमण्डि यं हेतुं, स प्रसद्योच्यतां मम ॥९१॥
यौष्माकीणोपकारस्यानृण्यं नाप्नोमि यद्यपि । मुदं मदुचितार्थोक्त्या, तथाऽपि क्रियतां च मे ॥९२॥
सनिर्बन्धं प्रधानेन, पृष्टे पृथ्वीधरोऽवदत् । कथ्यतेऽर्थस्तदा सिद्धिं, याति यद्यविलम्बितम् ॥९३॥
हेमादिः स्माह किं वच्मि, बहु युष्माभिरीहितम् । कार्यं कार्यं मयाऽर्थेन, बलेन वपुषाऽपि च ॥९४॥
देदाङ्गभूरवक् तर्हि, देवगिर्याः पुरोऽन्तरे । महीमर्ह्या विहारस्य, महतीं मह्यमर्पय ॥९५॥
औद्धत्येन द्विजानां तद्दुःसाधमपि धीसखः । तदा स प्रतिपेदानः, प्रौढोपकृति-भारितः ॥९६॥
ततस्तौ सपरीवारौ, गतौ देवगिरीं पुरीम् । हर्म्ये हेमादिना रम्ये, मन्त्रीन्दुरुदतार्यत ॥९७॥
राज्ञे विज्ञपयिष्यामि, स्वयं चैत्यमहीकृते । चिन्ताऽत्रार्थे न वः काऽपीत्युदित्वा चाऽऽगतो गृहम् ॥९८॥
वीक्षमाणः क्षणं सोऽथ, नृपोपान्तं न मुञ्चति । यद्विनाऽवसरं कार्यं, क्रियमाणमशोभनम् ॥९९॥ उक्तं च—

"गेयं नाट्यं रमा रामा, भूषा भक्तं पयः सिता । धत्तेऽनवसरे सर्वं, प्रीतिवीरुधि पर्शुताम् ॥७६॥
प्रस्तावे भाषितं वाक्यं, प्रस्तावे शस्त्रमङ्गिनाम् । प्रस्तावे वृष्टिरल्पाऽपि, भवेत्कोटिफलप्रदा ॥७७॥"

एतावताऽऽगतास्तत्र, हयविक्रयिपूरुषाः । उत्तेरुरन्तरुद्यानं, बद्धसद्धयपङ्क्तयः ॥१००॥
श्रुत्वा तान्नृपतिस्तत्र, प्राप्तः सप्तिवराप्तये । प्रधानमभ्यधाच्चैषु, ब्रूत कोऽश्वो ग्रहीष्यते ॥१०१॥

---

१ हेतुः । २ युष्माकम् । ३ हेमादि । ४ प्रीतिलतायाम् । ५ प्रधानाऽश्वप्राप्तये ।

हेमादि-मन्त्रिणा पेथडस्य हार्दिक-सत्कारः ।

शालिहोत्र-प्रणीताश्वलक्षणेषु विचक्षणः। वीक्ष्य सर्वानमात्योऽश्वजात्यमेकं त्वदर्शयत् ॥१०२॥
देवसत्त्वो दशावर्तो, मालतीगन्धबन्धुरः। लघीयः श्रवणः स्निग्धरोमालि-श्यामलद्युति ॥१०३॥
पृथुपृष्ठिर्बृहद्वक्षाः, पीनः पश्चिमपार्श्वयोः। गम्भीरगुरुहेषः स, हर्षाय क्ष्माभुजोऽभवत् ॥१०४॥
गत्यादिभिः परीक्ष्यार्थं, न्यक्षलक्षणलक्षितम्। षष्ट्या टङ्कसहस्रैस्तं, गृहीत्वाऽगान्नृपो गृहम् ॥१०५॥
अन्यदाऽऽरुह्य तं राज्ञोऽन्यपुरं व्रजतः सतः। वाहः पङ्किलसद्यस्कोदकपूरोऽन्तरागतः ॥१०६॥
प्राणेन प्रेरितोऽप्यश्वो, न तस्मिन्नविशद्यदा। राज्ञा खेदात्तदाऽमण्डि, कशाभिस्तस्य ताडनम् ॥१०७॥
-जात्यो बिभेत्ययं नीरात्कुत इत्यादि चिन्तयन्। मन्त्री तु बुबुधे हेतुमाह तं प्रतिभाग्रणीः ॥१०८॥
नृपं निवार्य चोवाच, पिष्टवाल्याऽस्य बालधिः। बध्यतां देव! सद्योऽसौ, यथैनं लघु लङ्घते ॥१०९॥
तथाकृते स उड्डीय, गतः पारं परं हयः। शेषास्तु वाःपथेनायुस्तुल्यास्तेन यतो न ते ॥११०॥
भूपाले वलितेऽप्यागात्तथैवोड्डीय सोऽश्वराट्। राज्ञा पृष्टस्तदाचष्ट, उत्कृष्टप्रतिभः स्म सः ॥१११॥
मा भूदतुच्छमत्पुच्छ-च्छटाच्छोटोच्छलज्जलात्। कलुषादीषदप्येष, वेषः स्वेशस्य दूषितः ॥११२॥
इत्याशङ्कावशाद्वाहे, न तदैष प्रविष्टवान्। कुलीनाः प्रतिकूलाः स्व-भर्तुः क्वापि भवन्ति न ॥११३॥
सदाश्वस्तदनु स्वर्णालङ्कारो मधुराशनः। धूपोत्क्षेपादनूत्तीर्णप्रत्यहारात्रिक-त्रिकः ॥११४॥

हेमाद्रेः बुद्धिचातुर्यम्। श्रेष्ठाश्वस्य कुलीनता च।

१ प्रवाहः। २ वलेन। ३ उदरेण सह। ४ पुच्छम्।

सविताने रहःस्थाने, सुखसंदानवानहो ! । देवतेव स्वयं मान्योऽजन्योजस्वी महीभुजः ॥११५॥
पयःपरदलाघ्यापदापगासु प्लवं नृपः । कष्टभञ्जन इत्याख्यात्तं च वेगप्रभञ्जनम् ॥११६॥
विनयात्पशुरप्यर्चामाससाद स सादराम् । यनध्वं दुरितध्वंसे, तस्मिन्नन्येऽपि तज्जनाः ॥११७॥
विनयेनाप्यते विद्या, धनं मानं यशः सुखम् । भूयसोक्तेन किं वात्र, परत्रापि शुभाय सः ॥११८॥
हयाशयाऽवबोधात्तु, हेमादेर्विस्मयावहात् । तुष्ट आदिष्टवानिष्टं, वरीतुं भूपतिर्यदा ॥११९॥
तदाऽवसरमासाद्य, प्रण्यगद्यत मन्त्रिणा । देवेदं त्वद्वचो वृद्धदुग्धपानाऽर्थनायते ॥१२०॥
पुराऽपि स्वप्रभोः पार्श्वे, किंचिदेकं ययाचिषुः । अद्य चादिष्टमित्थं चेत्तद्भूदान्यावधारय ॥१२१॥
विहारं बन्धुरं बन्धुश्चिकारयिषतीह मे । मनोऽभिलषिते स्थाने, तत्कृतेऽर्पय तद्भुवम् ॥१२२॥
राजाऽऽख्यत्त द्विजाऽप्रीत्याऽप्यर्पणीयैव भूर्मया । परं कथय किं नामा, बन्धुर्वसति स क्व च ॥१२३॥
हेमादिरवदत्पृथ्वीधराख्योऽवन्तिमण्डनम् । रसनामानितो बन्धुर्नेतर्मे धर्मकर्मठः ॥१२४॥
भूपतिर्जयसिंहाख्यो, बिम्बमात्रत्यवन्तिषु । अच्छत्रचामरः पृथ्वीधर एव परं पतिः ॥१२५॥
प्रातः प्रभुप्रणत्यै स, आगन्ता गौरवं तदा । स्नेहगेहागतावन्तिपत्यर्हं सर्वमर्हति ॥१२६॥
ततो राजाऽवधार्येदं, हृदये संप्रधार्य च । राजकार्यैरनेकैस्तं, गमयामास वासरम् ॥१२७॥

राज्ञे चैत्यभूमिकृते हेमादिना निवेदनम् ।

१ चन्द्रातपसहिते । २ सुखरूपबन्धनवान् । ३ तरण्डम् । ४ विनये । ५ हे भूरिदानशील ! । ६ हे स्वामिन ! ।

हेमादिरपि सामोदं, हृदयाम्बुरुहं दधत् । प्रधानस्य प्रगे भूप-मिलनावसराद्यवग् ॥१२८॥
अथोदयगिरिं भानुरिव सिंहासनं प्रगे । समं समन्त्रिसामन्तादिभिरध्यास्त पर्षदि ॥१२९॥
न्यस्तस्थालस्थ-निष्कौघोपरिष्ठाल्लाङ्गलीफलः[1] । तदा मिलितुमायासीत्तस्य मालवधीसखः ॥१३०॥ (युग्मम्)
आसन्नमागते तस्मिन्, सहसोत्थाय पार्थिवः । तमालिलिङ्ग रङ्गेण, विनीताः कुलजाः किल ॥१३१॥ यतः—

पेथडमन्त्रिणे चैत्यकरणार्थं महीदानम् ।

"केनाञ्जितानि नयनानि मृगाङ्गनानां, कोऽलङ्करोति रुचिराङ्गरुहान् मयूरान् ।
कश्चोत्पलेषु दलसंनिचयं करोति, को वा दधीत विनयं कुलजेषु पुंस्सु ॥७८॥

आसने तं निवेश्यार्हऽनुयुज्य स्वगतादि च । प्रत्यार्पि प्राभृतं राज्ञा, गृहीत्वा लाङ्गलीफलम् ॥१३२॥
परिधाप्य प्रधानं च, भूपो भूदानहेतवे । हयमारुह्य पूर्यन्तरगाद् भूरिपरिच्छदः ॥१३३॥
अन्तश्चतुष्पथं पृथ्व्यां, प्रार्थितायामिलापतिः । तां दत्त्वाऽदापयद्दोरीं, दमयित्वापि[2] द्विजव्रजम् ॥१३४॥
हाटकैः[3] प्राभृतानीतैः, संतोषितपुरीजनम् । प्रधानश्च ध्वनद्वाद्यं, चक्रे हर्षमहामहम् ॥१३५॥
महेभ्यसप्तहर्म्यार्हमध्यां हट्टगृहाद्यथ । समग्रं पातयाञ्चक्रे, वक्रेतरहृदाऽमुना ॥१३६॥
कच्छो[4] हि भज्यते धाम्ने, तद्भङ्गगृहहेतवे । तच्च हट्टाय तच्चैत्यायेतिलोकेऽपि यच्छ्रुतिः ॥१३७॥

---

१ नालिकेरफलम् । २ दमयित्वेति सम्यक् । ३ सुवर्णैः । ३ जलयुक्तः प्रदेशः ।

वंशत्रयमिते पादे, खानिते शोभनेऽहनि । स्वादु प्रादुरभूदम्भः, पूर्निपानेष्वसत्पुरा ॥१३८॥
मृष्टाम्बु खानिते तेनाऽऽविरभूत्तन्न कौतुकम् । निधानान्यपि भाग्येन, प्रादुष्यन्ति हि तादृशाम् ॥१३९॥

यतः—

"पदे पदे निधानानि, योजने रसकूपिका । भाग्यहीना न पश्यन्ति, बहुरत्ना वसुन्धरा ॥७९॥"

तद्विज्ञायोत्सुकैः सायं, मत्सरच्छुरितात्मभिः । विज्ञप्तं रामदेवस्य, भूदेवैः श्रृणु भूप भोः ! ॥१४०॥
न क्वाप्यत्र पयः स्वादु, पुराभाग्यात्तवाधुना । आविरासीद्विहारोर्व्यां, तद्वापीं तत्र कारय ॥१४१॥
वर्णा अष्टादशाप्यम्बु, पास्यन्तीह पिपासिताः । भावि यत्तत्र पुण्यं ते, पारं तस्य न विद्यते ॥१४२॥
कूपादेरवनीपाल !, निपानस्य विधापने । पुराणेऽप्युच्यते पुण्यं, चौरोदाहरणाद्बहु ॥१४३॥
यथा कोऽपि पुरा नष्टश्चौरः पथि तृषातुरः । सरस्यामीषदार्द्रोर्व्यां, निखायेषून् पयः पपौ ॥१४४॥
उत्खाय चेषूंस्तल्लग्नमृद्बहिष्कृति-पुण्यतः[3] । हतो गच्छन्नु प्राग्भैः, सुभटैः स सुरोऽभवत् ॥१४५॥
धात्रीमन्यत्र चैत्यार्हां, तद्वितीर्यात्र भूयसे । पुण्याय क्ष्मेपया वापीमपापीयान् विधापय ॥१४६॥
इत्याद्युक्तः द्विजैरज्ञैः, राज्ञो वाप्यादिकारणे । मेरुसर्षपवत् पापपुण्ययोरन्तरं परम् ॥१४७॥
नैकधा नव्य-कासारे, कुधिभिः कथिते सति । जगाद भोजराजाग्रे, धनपालोऽप्यदः सुधीः ॥१४८॥

चतुर्थः तरङ्गः ।

राज्ञोऽग्रे वाप्यादिकृते द्विजानां निवेदनम् ।

१ नगर जलाशयेषु । २ बाणान् । ३ बाणलग्नमृत्तिका-बहिष्कर्पणपुण्यतः । ४ रात्र्या । ५ भवान् राजा ।

एषा तटाकमिषतो वरदानशाला, मत्स्यादयो रमवनी प्रगुणा सदैव ।
पात्राणि यत्र बकसारस-चक्रवाका, पुण्यं कियद्भवति तत्र वयं न विद्मः ॥१४९॥

राजाऽथ द्विजतद्वाक्यात्फलदः[1] पवनोपमात् । दोलच्चित्तदलो जज्ञे, कर्णे[2]वामा हि पार्थिवाः ॥१५०॥ उक्तं च–

"घटवत्परिपूर्णोऽपि, विदग्धो रागवानपि । ग्रहीतुं शक्यते केन, पार्थिवः[3] कर्णदुर्बलः[4] ॥८०॥"

लवण क्षेपणेन जलस्य क्षारीकरणम् । राज्ञस्तदास्वादनञ्च ।

प्रातस्तत्रैत्य पीत्वाम्बु, स्वादुत्वे कारयिष्यते । वाप्येव विपुलेत्युक्त्वा, व्यसाक्षीत्तांश्च भूपतिः ॥१५१॥
स्वोत्तारके सदाऽऽगच्छन् मौलिग्रथनहेतवे । तत्रैकौ देदजेनाभूत्तोषितो नृप-नापितः ॥१५२॥
स च द्विजोक्तमाकर्ण्याजिज्ञपद्देदजन्मनः । प्रीणिताप्रीणितोऽल्पोऽपि, काले कुर्यात् शुभाऽशुभम् ॥१५३॥
सङ्कटाद्विकटात्किं न, कैरट्यच्छोत्स्यताऽऽखुना । नीतश्च किं न कीनाशनिकेतं[6] कर्णराट् भुवा ॥१५४॥
देदजेन ततो ज्ञात्वा, रात्रौ लवणबालदिम् । दत्त्वा प्रातोलिकाय[7] स्वं[8], पुर्यवेश्यन्त पौष्टिकाः ॥१५५॥
प्रक्षेप्य लवणं वारि, क्षारीकृत्य प्रचाल्य तान् । आगत्य चावन्त्यमात्यः, सुष्वाप सुखमालये ॥१५६॥
प्रगे तत्रागतो राजा, जनैरानाय्य तज्जलम् । स्वयमास्वादयामास, क्षारः थूदकरोत्तदा ॥१५७॥
मत्सरेण मृषाभाषि, विप्रैरिति विमृश्य च । उपालब्धद्विजः पृथ्वीधरं सम्मान्य सोऽगमत् ॥१५८॥

---

१ फलदायकः पक्षे वृक्षः । २ कर्णेषु दुर्बलाः । ३ राजा पक्षे घटः । ४ घटपक्षे घटोपरितलभागहीनः । ५ हस्ती । ६ यमगृहम् । ७ द्वारपालकाय । ८ स्वं द्रव्यम् ।

दुश्चिन्तितानि विप्राणां, सर्वाण्येवमगुः क्षयम् । यदि स्यादसतामिष्टं, सद्भिस्तज्जीव्यतेऽपि न ॥१५९॥ यतः—

"मृग-मीन-सज्जनानां, तृण-जल-संतोष-विहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धक-धीवर-पिशुनाः, निष्कारणवैरिणो जगति ॥८१॥"

चैत्यनिर्माणाय रत्नाकर शिल्पिनः प्राप्तिः ।

प्रासादभुवि लब्धायां, धीसखस्याथ धीनिधिः । मिमेल सूत्रधारो यस्तत्संबन्धोऽयमुच्यते ॥१६०॥
कारयित्वा पुरा सिद्धराजो रुद्रमहालयम् । सूत्रधारं चकारान्धमेतत्तुल्यं व्यधादिति ॥१६१॥
प्रासादं संधयातः[1] स, जैनं तदतिशायिनम्[2] । अचिकीर्षत्तरां किन्तु, न तत्कारयिताऽमिलत् ॥१६२॥
अवसाने स्वसूनोस्तु, सन्धास्वीकारणेन सः । उध्दृत्यारुन्तुदं[3] शल्यं, सुखेनापत् परासुताम्[4] ॥१६३॥
तदनु त्रिषु वंश्येषु, सन्धाऽचालीत्तथैव सा । पञ्चमोऽथ कलारत्नाकरो रत्नाकरोऽभवत् ॥१६४॥
स च नव्यमिवाधात्तद्वैरं दीर्घेऽप्यनेहसि[5] । क्षीयते हि न विद्वेषः, प्रेम हेमर्णमर्णवः ॥१६५॥
ततो बम्भ्रम्यमाणोऽसौ, वासचैत्यचिकीर्षया । तच्चिकारयिषोस्तत्रावसरे मन्त्रिणोऽमिलत् ॥१६६॥
तेनाथारभ्य सांक्षेपं, कर्मस्थायममायहृत् । तत्र मुरुकवणिक्पुत्रोऽवन्तिषु प्राप धीसखः ॥१६७॥
कर्मस्थायकृते दन्त (३२) प्रमिता भर्मणा[6] भृताः । सुरभीकृतदिक्कीर्तिः, करभीः प्रजिघाय च ॥१६८॥
तत्कृते चेष्टकापाक-सहस्राणि दशाभवन् । तेष्विष्टकासहस्राणि, प्रत्येकं वीप्सया दश ॥१६९॥

१ प्रतिज्ञया । २ रुद्रमहालयातिशयम् । ३ पीडाकारकम् । ४ मृत्युम् । ५ काले । ६ सुवर्णेन ।

प्रासादप्रभवे पुण्ये, तदारम्भोत्थितं ह्यघम् । दोषं विषं-पृषद्दुग्ध-वार्धाविव न पुष्यति ॥१७०॥
त्रिवंशीमितपादाश्म-संधिष्वासन् क्रमेण च । बाण (५) दिग् (१०) तिथि (१५) संख्यायःसेराणां तत्र पादुका ॥१७१॥

देवगिरौ विशालचैत्य-निर्माणम् ।

चतुश्चत्वारिंशदग्र-चतुर्दश-शतस्थिरे । जगदङ्क (२१) गजायामाः, कियत्योऽप्यश्मपट्टयः ॥१७२॥
श्रुत्वाऽथाण्डारोहपट्या, विघ्नमन्तर्ग-दुर्गतः । नत्रैत्य देदभू रात्रौ वप्रं नावत्यपातयत् ॥१७३॥
संयोज्योभयतः पद्याखण्डे सोऽखण्डभाग्यभूः । अण्डमारोप्य वप्रं चासज्जयद्धृतसाहसः ॥१७४॥
सिद्धिः साहसिनः स्याद्धि, न पुंसः कातरस्य तु । कज्जलं भीरुणोरक्ष्णोः, श्रुत्योः स्वर्णानि धीरयोः ॥१७५॥
उक्तं च—

"विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधिर्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः ।
तथाऽप्याऽऽजौ रामः सकलमवधीद्राक्षसकुलं, क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे ॥८२॥"

सारोदारोऽखिलश्चैत्ये, घाटोऽभूदघटालकः । येन सामान्य चैत्यानां, स्यादशीतिश्चतुर्युता ॥१७६॥
तदन्तःस्थापनायेन्दुज्योतिरारासणाश्मनः । त्र्यशीत्यङ्गुलमानं श्रीवीरबिम्बमकार्यत ॥१७७॥
पाञ्चालीस्तस्य पश्यन्तो, बहवोऽपीति मेनिरे । नपः कुर्मः परत्रेहक्कान्तावाप्तिनिदानकम् ॥१७८॥

---

१ विषबिन्दुक्षीरसमुद्र इव । २ भागे । ३ त्रिजगन्निष्पत्तौ । ४ ब्रह्मणः ।

पेथडमन्त्रिश्वरस्य माधवबन्दिकृतश्लाघा ।

नैपुण्योत्कीर्णसंपूर्णवस्त्वाकार-करम्बितः । सोऽधात्त्रिजगतीसर्गे, धातुर्बिम्बककोशताम् ॥१७९॥
उपरम्य स रम्यः सन्नपि याति न यद्भुवः । जाने गाढजडोपात्तपादत्वं तत्र कारणम् ॥१८०॥
प्रासादप्रतिमाहेमकुम्भदण्डध्वजाः समम् । प्रत्यष्ठाप्यन्त तेनाष्टापदनिष्ठापकोत्सवैः ॥१८१॥
प्रतिष्ठायां भवन्त्यां च, परोलक्षेभ्यपर्षदि । बभणे माधवाख्येन, बन्दिना वृत्तमुत्तमम् ॥१८२॥
श्रुत्वा तावकपुण्य-पूरमुरुगीसंगीतगीतं शिरः, शेषो यद्यधुना धुनाति वसुधा भ्रश्यत्यवश्यं तदा ।
किन्तु त्वद्रचिताद्रिजिज्जिनगृहप्राग्भारभारान्नवान्नालं मूर्धविधूननाय सततः सत्योऽसि पृथ्वीधरः ॥१८३॥
नव्यकाव्याकरोऽसौ तु, व्याकरोत्तद्यदा मुदा । तदा लज्जाभरेणाभूद्धीसखो नम्रमस्तकः ॥१८४॥ यतः—

"लज्जा कुलोद्द्योतकरी, लज्जा सौभाग्यकारिणी । लज्जा धर्मतरोर्मूलं, लज्जाऽज्ञा पापकर्मणि ॥८३॥"

अमन्तोऽस्यै न रोचन्ते, सद्वयो नेयं च रोचते । इत्यप्राप्तवराऽद्यापि, कुमारी स्तुतिकन्यका ॥८४॥"

सभ्याः शेषास्तदाऽशेषास्तदाकर्ण्य चमत्कृताः । मूर्धानं धूनयामासुः, कवितागुणशंसिनः ॥१८५॥
मंत्र्यथाकार्य गन्धर्वकवि-चारणबन्दिनः । अब्रवीन्मानमेकं वः, पार्श्वेऽहं मार्गयामि भोः ॥१८६॥
पितृभ्यामेव यद्दत्तं, यादृशं तादृशं मम । तद्वाच्यं नाम न त्वन्यत्कल्पनीयं यथा तथा ॥१८७॥ यतः—

---

१ त्रिजगन्निष्पत्तौ । २ ब्रह्मणः । ३ कदाग्रही जलं च । ४ स्वर्णसमाप्तिकारकोत्सवैः । ५ स्तुतिकन्यकायै । ६ स्तुतिकन्या ॥

"आकाशस्याम्बराख्या हरिरितिविदितं दर्दुरस्याभिधानं,
काकस्यापि द्विजत्वं विषमफणिपतेर्नाम भोगी भुजङ्ग।
क्षुद्राश्मा शर्करेति द्विरदमदजलं दानमर्थेन शून्यं,
व्यर्थ नामानि केचिद्विदधति सुधियः साधु साडम्बराणि ॥८७॥"

स्वश्लाघा-श्रवणेन पेथडस्य चित्तपीडा ।

असच्छन्दकतुल्यैश्च, कल्पितैर्बिरुदादिभिः । काकिणीमपि नो दास्ये, दोदूया भाविनी च मे ॥१८८॥
इत्युक्त्वाऽनर्पिते वित्ते, प्रधानेन्द्रेण बन्दिनः । दानं सानन्दमन्येभ्यैर्दत्तमाभवभोगदम् ॥१८९॥
अल्पकर्तव्यजा कीर्तिः, कस्य हास्यं न यच्छति । प्रौढपुण्योद्भवा या तु, सा हि सर्वस्य वल्लभा ॥१९०॥

॥ इति पेथडनिरहङ्कारता-प्रबन्धः ॥



सस्वर्णकलशाः स्वर्णतिलकाः सकलत्रकाः । स्नात्राणि तत्र च ब्रह्मचारिणोऽष्टशतं व्यधुः ॥१९१॥
तेषां विरचयाञ्चक्रे, भक्तिश्च वचनातिगा । ब्रह्मचार्यन्यथाऽप्यर्च्यः, किं पुनस्ताहगर्थकृत् ॥१९२॥

१ असद्वक्तव्यतुल्यैः ।

साधर्मिकाणां वात्सल्यमश्नतां मौलिदोलनम् । अर्चामखिलगच्छानां, हृचमत्कारिचीवरैः ॥१९३॥
दिग्वसङ्क (८४) सहस्रेद्धस्वर्णवेष्टार्पणं च सः । श्राद्धानां विदधे सर्वपरिधापितसन्मडिः ॥१९४॥
छेत्तुं दौस्थ्यशिलाष्टङ्कैष्टङ्कैष्टङ्कारिकीर्तिना । पञ्चलक्षमितैस्तेन, स्तेनैस्तेने हृदां महः ॥१९५॥
अभ्रंलिहविहारस्य, शृङ्गमारुह्य तस्य यः । अतिष्ठपदभीकात्मा, कुम्भदण्डध्वजत्रयीम् ॥१९६॥
पट्टकूलानि पञ्चास्य, पाण्योः सौवर्णशृङ्खले । प्रभूतं च धनं सोऽदान्मुद्रादीन्यपरे जनाः ॥१९७॥
सपादं पट्टकूलाद्यैर्द्रम्मलक्षमवाप्य सः । नृपाश्वपालः श्रीवीरनित्यपूजाव्रतोऽजनि ॥१९८॥
यदि ह्यभावाप्यस्त्यर्हद्भक्तिरीदृग्फलावहा । तर्हि तां कुर्वतां भावादनन्तं जायते फलम् ॥१९९॥

॥ इति पेथडकारितदेवगिरिप्रासाद-प्रवन्धः ॥



पेथडकृता प्रवरा साधर्मिक भक्तिः ।

एवं महीयुवतिमण्डनशेखरः श्रीविश्राणकैरखिलधीसखचक्रवर्ती ।
चक्रे वसन्त इव लक्ष्मिलनां नितान्तश्वेतां स चैत्यकुसुमस्तवकैः कृतार्थाम् ॥२००॥

१ अङ्गुष्ठमुद्रिका । २ द्रव्यैः । ३ हृदयचोरः ।

॥ इति युगोत्तमगुरुश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टालङ्कारक्रमेण श्रीरत्नशेखरसूरिविनेयपण्डितनन्दिरत्नगणिचरणरेणु-रत्नमण्डनविरचिते मण्डनाङ्के सुकृतसागरे पेथडकारितचतुरशीतिप्रासादस्थानादिकथनो नाम चतुर्थस्तरङ्गः ॥४॥



॥ अथ पेथडब्रह्मव्रतोच्चार-तत्प्रभावकथनो नाम पंचमस्तरङ्गः प्रारभ्यते ॥

। तत्र पेथडतुर्यव्रतोच्चार प्रबन्धः ।



भीमश्रावकस्य पेथडस्योपरि मडि प्रपणम्।

आसीत्ताम्रावतीवासी, भीमः सौवर्णिकाग्रणीः । श्रीदेवगुरुभक्तात्मा, धनेन धनदोपमः ॥१॥
श्रीदेवेन्द्रगुरूणां स्वर्गमनादनु यः कृती । अब्दानि द्वादशाऽन्नेन, विनाऽतिष्ठदहो ! शुचा[1] ॥२॥
साधर्मिकाणां तेनात्तब्रह्मचर्येण भक्तये । मडिसप्तशती प्रैषि, पञ्चपञ्चदुकूलयुग् ॥३॥
तेष्वैका सचिवस्यागात्तां चौकःप्रापुषीमपि । बहिष्प्रेष्य पुरात्प्रौढप्रवेशोत्सवमानयत् ॥४॥

१ आश्चर्यजनकः शोकः ।

टङ्कायुतव्ययानीतामवसित्वैव तां तु सः । देवतावसथे तावदानर्च कतिचिद्दिनान् ॥५॥
भूपानां परिधापिन्यः, पञ्चपञ्चाशता मिताः । दशम्यां विजयस्यायान्त्यब्देऽब्दे तस्य चोत्तमाः ॥६॥
व्यापारात्प्रभृति प्राप्ताः, सतीः सीमान्तभूभुजाम् । राजप्रतिग्रहत्वेन, मन्त्री वस्ते न तास्तनौ ॥७॥
दृष्ट्वा प्रथमिणिस्तद्वत्तामप्यवसितां मडिम् । मा भूत्साधर्मिकावज्ञापापमस्येति शङ्किता ॥८॥
देवार्चासमयेऽवोचत्, सचिवं सा विचारिणी । मुक्त्वैवं किं मडिः स्वामिन् !, किं नाङ्गे परिधीयते ॥९॥
साधर्मिक इति ब्रह्मव्रतिना तेन मेऽर्पिता । अहं तु न तथा वस्से, तेनैतां नेति सोऽवदत् ॥१०॥
साधर्मिकधिया सप्तशतानां प्रहिता हि ताः । न कस्यापि परं पुंसोऽन्यस्यैषा धिषणोदभूत् ॥११॥ यतः—

"अधार्मिकमलावण्यमगुणं मर्मभाषिणम् । यः स्वयं स्वं विजानाति, तेन वन्ध्या वसुन्धरा ॥८६॥"

मडिरार्पि यदा पृथ्वीधरस्य तु तदैव हि । विषयेषु विरागोऽभूदल्पबोध्याहि सज्जनाः ॥१२॥ उक्तं च—

"स्वच्छो मणिः समनुरज्यत एव तावदस्वच्छमेतदपि वस्त्रमुपायरक्तम् ।
को नाम वत्सरशतैरपि दुर्विदग्धमङ्गारमेनमनुरञ्जयितुं समर्थः ? ॥८७॥
विषयाम्भसि मृत्स्नेव, केऽपि ते प्रस्तरोपमाः तरन्ति काष्ठवत्केचिज्जलकान्तवदुत्तमाः ॥८८॥
मृगाणां वागुराबन्धोः नेभानां भारशृङ्खला । आशाऽपि बन्धो मूढानां, भोगाः सन्तोऽपि नो सताम् ॥८९॥"

पेथडप्रथमिण्याः मडिविषयकप्रश्नोत्तरम् ।

---

१ अपरिधाय । २ विजयादशम्याम् । ३ पेथडस्य । ४ परिदधाति । ५ मडीः ॥

पञ्चमः तरङ्गः ।

गुरुपार्श्वे- सोल्लास तुर्यव्रत ग्रहणम् ।

शालिः स्वस्याधिपं श्रुत्वा, स्थूलभद्रः पितुर्मृतेः । विरक्तः कार्तिको दूनो, मेतार्यस्तु विगोपितः ॥१३॥
प्रेयस्यनुमतौ तुर्यमादास्ये व्रतमित्यसौ । वाञ्छंस्त्ववसरं तावन्त्यह्नान्यर्हितवान् मंडिम् ॥१४॥
अस्मिन्नवसरेऽभाणि, भार्यया भर्तुरार्यया । व्रतमप्युररीकृत्य, स्वामिन्नेषा निवस्यताम् ॥१५॥
वार्तेयं रोचते तुभ्यमिति पृष्टे तया मुदा । आमेत्युक्ते सुधीरासीदसीमानन्दमेदुरः ॥१६॥
साऽऽर्याश्चर्याय नार्यासीद्यच्चेतो यौवने घने । वित्ते स्फीते मते कान्ते, नाक्रान्तं विषयेच्छया ॥१७॥
दयितोक्तकृदाबाल्यादप्यलुप्तकुलक्रमा । यौवनेऽप्यस्तभोगेच्छा, सा सतीष्वधिका गुणैः ॥१८॥
कौमारे कर्णसूः कुन्ती सीता पत्युक्तलोपिनी । भोगतृष्णाकुला कृष्णा, काऽऽसीत्तुल्या तया सती ॥१९॥
गुरूपान्तेऽद्भुतानन्दौ,नन्दौ तावद्य सोत्सवम् । द्वात्रिंशे वत्सरे तुल्यं, तुर्यं स्वीचक्रतुर्व्रतम् ॥२०॥
तारुण्यपयसः पूरे, पातितप्रौढपुंस्तरौ । प्रतीपतरणात्ताभ्यां कृष्णचित्रलतायितम् ॥२१॥
पञ्चक्षौममयैस्तदा मडिशतैर्देशेषु साधर्मिकास्तेन स्वीकृतचक्रिरत्नगणनैरभ्यर्चयाञ्चक्रिरे ।
श्रीभीमव्यवहारिणः प्रतिमडिं दत्त्वा तदीया पुराऽऽयाना सा पुनरादरात् परिदिधे चित्तोदधेश्चन्द्रिका ॥२२॥

॥ इति पेथडतुर्यव्रतोच्चारप्रबन्धः ॥



१ आर्यपुरुषाणांकृते आश्चर्याय इत्यर्थः ।

अथात्तब्रह्मचर्यस्तद्दिनादारभ्य सभ्यगीः । ब्रह्मणः प्रतिकूलं न, ताम्बूलं स मुखे ललौ ॥२३॥ यतः—

"ताम्बूलं सूक्ष्मवस्त्राणि, स्त्रीकथेन्द्रियपोषणम् । दिवा निद्रा सदा क्रोधो, यतीनां पतनानि षट् ॥९०॥
वक्रे च यदि गीः सभ्या, ताम्बूलेन तदाऽस्ति किम् ? । विद्यते सा न चेत्पुंसां, ताम्बूलेन तदाऽस्ति किम्? ॥९१॥
वृन्तादिगपृथग्जीवमात्मांशस्पृष्टवल्लरि । नीलीकुन्थ्वाद्यमार्द्रत्वात्त्याज्यं नागलतादलम् ॥९२॥
आयातेयमधोलोकादधो नेतुं स्वस्वादिनः । मत्वेत्यहिलता त्याज्या, रङ्गहेतुः परं मुखे ॥९३॥"

सूक्ष्मावधानेन ब्रह्मचर्यपालनम् - तन्महिमावर्णनञ्च ।

नारीश्च वयसा वृद्धाः, जननीर्भगिनीः समाः । मेने लघ्वीः सुता रागपरागापेतहृत्कजः ॥२४॥
प्रत्याददे दृशौ दृष्ट्वा, परस्त्रीं भानुभामिव । मार्गे स्त्रैणमवामाङ्गं, पुष्पादीव च सोऽमुचत् ॥२५॥
मनोमालिन्यमुग् मन्त्री, वाग्विकारविवर्जितः । नष्टकायकुचेष्टश्च, त्रिशुद्ध्या तदपालयत् ॥२६॥ यतः—

"सीमा खानिषु वज्रखानिरगदङ्कारेषु धन्वन्तरिः, कर्णस्त्यागिषु देवतासु कमला दीपोत्सवः पर्वसु ।
ॐकारः सकलाक्षरेषु गुरुषु व्योम स्थिरेषु स्थिरा, श्रीरामो नयतत्परेषु परमं ब्रह्म व्रतेषु व्रतम् ॥९४॥"

ततश्चार्यकृताश्चर्यब्रह्मचर्यप्रभावतः । निस्सीमा महिमाऽऽसीत्तद्देहस्यापि प्रभावतः ॥२७॥ तथाहि—
भूत-प्रेत-मृषादिव्य-शाकिन्यवतरादयः । नश्यन्त्युष्णांशुभासोऽग्रेऽन्धकारा इव तद्दृशः ॥२८॥
ज्वरोदरशिरः पीडाशूल-सूतिव्यथास्तथा । तदङ्घ्रिधावनाद्यान्ति, कालपानीयतो यथा ॥२९॥

---

१ सभायां साध्वी सभ्या सत्या गीर्यस्य । २ नागवल्ली ॥

पेथडदुकूलेन लीलावत्याः ज्वरनिवारणम् ।

दुष्टज्वरादयो रोगाः, दुर्वारा व्यन्तरादयः । यान्ति तत्तनुवस्त्रादप्यस्त्रादिव्यादिवारयः ॥३०॥
अन्यदा प्राभृतीचक्रे, भूपस्येभ्येन केनचित् । सपादद्रम्मलक्षार्घ, दुकूलं दक्षिणोद्भवम् ॥३१॥
कौमुदीकोमलैरन्यैश्चतुर्भिः सिचयैः सह । तच्च प्रीतिवशाद्राजा, मन्त्रिणा पर्यदीधपत् ॥३२॥
बहुमूल्यतया नेदं, देवपूजाक्षणं विना । वसनार्हमिति प्राप्य, सौधं पत्न्यै स चार्पिपत् ॥३३॥
सुस्थानेऽस्थापयत्तत्साऽत्रान्तरे या नरेशितुः । राज्ञो लीलावती नाम, कन्यकुब्जनृपाङ्गजा ॥३४॥
सा तृषादिपुषा योषाशिरोमणिरपीड्यत । ज्वरेण त्र्याहिकेणोच्चैः, कदलीव कृशानुना ॥३५॥
भूपेन कार्यमाणेषु, प्रतीकारेषु भूरिषु । निकाचितमिवादृष्टं, नागात्तस्याः स दुर्ज्वरः ॥३६॥
तच्चेटीमन्यदोच्चाटश्यामास्यामागतां गृहे । पप्रच्छ प्रथमिण्येवं, दृश्यसे दुःखिनीव किम् ॥३७॥
अस्ति नः स्वामिनी भूरिदिनभ्यो दुर्ज्वरार्दिता । क्षीयते च निदाघार्तो सरसीव दिने दिने ॥३८॥
मन्त्रतन्त्रौषधाद्यैरप्यद्ययावद्गुणस्तु न । तेनाऽस्मि दुःखदावाग्निदग्धेत्याह स्म सा तदा ॥३९॥
जगौ चामात्यरामा चेन्मन्त्रिणः परिधानकम् । प्रावृत्यानागतं तिष्ठेद्राज्ञी तन्नेति हि ज्वरः ॥४०॥
चेट्याऽथ मार्गिते तस्मिन्नुपकारैकतानया । अन्याभावात्तदेवार्पि, दुकूलं धन्यया तया ॥४१॥
चेट्या दत्तं च तद्राज्ञी, तद्वाचास्थावती सती । प्रावृत्यानागतं सुप्ता, ज्वरो नागाच्च तद्दिने ॥४२॥

१ परिधानयोग्यम् । २ तृड् आदिपोपकेण ज्वरेणाति संबन्धः ॥

फलमात्रार्पणेनेव, सर्वदस्य द्युशाखिनः । सर्वं कर्तुमलंभूष्णोः, का शीलस्येयता स्तुतिः ॥४३॥
पुनरागमशङ्कातस्तदागतमपि ज्वरम् । राज्ञे नाजिज्ञपत्कोऽपि, कुप्यन्ति ह्यनृतैः नृपाः ॥४४॥
तेनाच्छाद्य पुनः स्वाङ्गं, सर्वं सा ज्वरवासरे । सुप्ता सत्यधिपल्यङ्कं, भेजे निद्रामभाग्यतः ॥४५॥
अस्मिन्नवसरे तं च, वृत्तान्तं ज्ञातपूर्विणी । राज्ञी मुख्या कदम्बाख्या, भूपायाख्यदितीर्ष्यया ॥४६॥
स्वामिन्नेकाऽस्ति विज्ञप्तिस्तुभ्यं रोचिष्यते तु न । तथाऽपि गुणहेतुत्वादगदन्यायतः श्रृणु ॥४७॥
कान्यकुब्जागता या ते, लुब्धा सा धीसखेऽधिकम् । तवामङ्गल्यकृन्मा भूत्कामान्धा ह्यघनिर्भया ॥४८॥
यन्त्रणं मृगनेत्राणां, शक्रेणापि च दुःशकम् । लुब्धाश्चेत्तद्व्रजन्त्यन्यं, पातालस्थापनेऽपि ताः ॥४९॥
तुच्छाः स्वाच्छन्द्यमिच्छन्त्यरुछद्मच्छेकतया परम् । भर्तारमपि पापिन्यः, प्रापयन्ति यमालयम् ॥५०॥
तस्यास्तु लुब्धता बाढं, या रन्त्वा निशि मन्त्रिणा । दिवाऽपि हृदयात्तस्य, परिधानं न मुञ्चति ॥५१॥
यदि न प्रत्ययः स्वामिन् !, मदुक्ते जायते तव । तर्हि सम्प्रति वीक्षस्व गत्वा तन्मन्दिरोदरे ॥५२॥
प्राप्तो राजाऽथ तद्गेहे, दृष्ट्वा रक्तांशुकावृताम् । तां रागसागरस्यैव, मध्ये मग्नाममन्यत ॥५३॥
मङ्क्षूपलक्ष्य च क्षौमं, रोपाऽरुणिमदम्भनः । भूपोऽभूदिव तच्छोणच्छायाछुरितलोचनः ॥५४॥
कदम्बावचनोत्पन्नात्यान्तिकप्रत्ययस्तदा । क्रुद्धोऽपि स्त्रीरवध्येति, तामहत्वा व्यचिन्तयत् ॥५५॥

लीलावत्योपरि नृपस्य रोपः ।

---

१ औपधन्यायेन ॥

पीयूषाद्विषमुद्भूतं, वह्निवृष्टिरभूद्विधोः । यद्यासीद्धीसखादेतदकृत्यं जगदुत्तमात् ॥५६॥
सत्त्वानां चरितं चित्रं, विचित्रा कर्मणां गतिः । मलिनत्वं च कामानां, तत्का संभाव्यतात्र न ॥५७॥
यद्यस्यामस्ति नासक्तो, नास्तिक्यां सचिवस्तदा । प्रीत्या मयार्पितं क्षौमं दत्तेऽस्यै निस्समं कुतः ॥५८॥
स्वीकृत्यानर्हतायां च, व्रतभारमनुत्तरम् । नन्दिषेणार्द्रमदन-कीर्त्याद्या अपि तत्यजुः ॥५९॥
तदेनां देशतः क्रष्टुममुष्येवादिशे यदि । तदाऽनया सहैषोऽपि, विदेशे याति दुर्मतिः ॥६०॥
अलक्ष्मीः कर्षिता चैवं, स्यादेषोऽपि च तोषितः । इत्यालोच्यादिशत्तस्मै, तां निर्वासयितुं नृपः ॥६१॥
अविचारितकारित्वमनुमाय च भूभुजः । मन्त्री तामानयद्गेहे, राज्यलक्ष्मीमिवाङ्गिनीम् ॥६२॥
दूरे सा वान्तिके त्यक्तेत्याद्यपृच्छन्न तं तु सः । आस्तामप्रेयसो वार्ता, नामापि न सुखायते ॥६३॥
तस्या निर्वासनं श्रुत्वा, कदम्बानन्दिना हृदि । सपत्नीसर्पशाकिन्यस्तद्युक्तं तुलिता जनैः ॥६४॥
सपत्न्या भ्रक्षणस्यापि, पार्वत्याः स्नेहबिन्दुभिः । चीरं चेद्दूषितं तर्हि, जीवन्ती सा कथं शुभा ॥६५॥
तवागोऽभूत्किमित्युक्ते, किंचित् तात ! स्मरामि न । इत्यादिवादिनीं गुप्तां, नामाश्वास्य ररक्ष सः ॥६६॥
राज्ञा निष्कासिता लज्जे, यान्ती च पितृमन्दिरम् । उभयभ्रष्टताभाजः, शरणं तन्मृतिर्मम ॥६७॥
ध्यात्वेत्युद्बन्धनं कर्तुं, पिधाय द्वारमुद्यता । पपात त्रुटिते दोरे, पुण्ये प्राणीव साऽबला ॥६८॥
तदा पातरवं श्रुत्वाऽऽकस्मिकं जातसंभ्रमात् । द्वारमुद्घाट्य गेहान्तर्जगाम सचिवप्रिया ॥६९॥

लीलावत्याः पेथडागृहानयनम् तस्याआत्मघातयत्नश्च ।

लीलावत्यै मताप निवारणाय नमस्कार मन्त्रदानम्

तां तथाचेष्टितां दृष्ट्वा, स्माऽऽचष्टे च विशिष्टधीः । मुग्धे किमिदमारब्धमसाधुममदोषितम् ॥७०॥
साऽवक् किं न म्रिये राज्ञा, विनागोऽपि विगोपिता । न जीवति हि पानीये, गते मातः ! शफर्यपि ॥७१॥
ऊन नूनमकुष्माण्डतुलया महिमालयाः । अङ्गुलीदर्शने जाते, कथं जीवन्ति मानिनः ॥७२॥
गृहिणी मन्त्रिणोऽभाणीद्वत्से ! मैतां मतिं कुरु । मरणे दुर्गतिः श्रेयःश्रेणिस्तु प्राणने नव ॥७३॥
किन्तूपायं विधेहि त्वं सदुक्तं हितकाङ्क्षिणी । येन तापं इवापैति, संतापोऽप्ययं नावकः ॥७४॥
नारयोपायपोतेन, तन्मां दुःखोदधेरिति । तयोक्तेऽमात्यकान्ताऽऽख्यन्महिमादि नमस्कृतेः ॥७५॥
तथाहि —मन्त्रः पञ्चनमस्कारः, कल्पकारस्करा धिकः । अस्ति प्रत्यक्षराष्टाग्रोत्कृष्टविद्यासहस्रकः ॥७६॥
चौरो मित्रमहिर्माला, वह्निर्वारि जलं स्थलम् । कान्तारं नगरं सिंहः, शृगालो यत्प्रभावतः ॥७७॥
लोकद्विष्टप्रियावश्यघातकादेः स्मृतोऽपि यः । मोहनोच्चाटनाकृष्टिकार्मणस्तम्भनादिकृत् ॥७८॥
दूरयत्यापदः सर्वाः, पूरयत्यत्र कामनाः । राज्यस्वर्गापवर्गास्तु, ध्यातो योऽमुत्र यच्छति ॥७९॥
श्रीपार्श्वप्रतिमापूजा-धूपोत्क्षेपादिपूर्वकम् । तमेकाग्रमनाः पूतवपुर्वत्साऽनिशं जप ॥८०॥
इत्युक्त्वाऽशिक्षयद्दक्षा, तस्याः पञ्चनमस्कृतिम् । सा च तां विधिना लग्ना, तन्मनाः स्मर्तुमातुरा ॥८१॥
बद्धपद्मासना कान्ताकारा श्वेतांशुकावृता । हस्तरत्नाक्षमाला सा, भारतीव व्यभात्तदा ॥८२॥

१ यथा तव्य कुष्माण्डफलमङ्गुलिस्पर्शनात् शोसमुपयाति तथैवात्रापि बोध्यम । २ ज्वर इव । ३ कल्पवृक्षाधिकः ॥

नृपगजराजस्य यत्रतत्र धावनम्।

पञ्चाशतिसहस्रेषु, जप्तेष्वास्थाजुषः सुरी। तस्याः स्वप्नान्तरागत्य, काऽपीति प्रीतिकृज्जगौ ॥८३॥
इतोऽष्टमदिने वत्से !, भवत्सेवोत्सुको नृपः। त्वामाकारयितुं राजा, स्वयमायास्यति प्रगे ॥८४॥
इदं च प्रातराख्याय, प्रथमिण्यै विशेषतः। सा दध्यौ तं न को दृष्टप्रत्ययं प्रति रज्यते ॥८५॥
स्वप्नोक्तानां दिनानां तु, पञ्चमेऽहनि पूर्णताम्। लक्षजापे तया नीते, यदभूदथ तद्ब्रुवे ॥८६॥
श्यामाङ्गासक्तसिन्दूरः, स्फुरद्धातु नु भूधरः। ससन्ध्यः किं तमःस्तोमस्तडित्वानिव नीरदः ॥८७॥
स्वर्णकङ्कणिकासक्त-वरत्राकैतवात्तनौ। बिभ्रज्जयप्रशस्तीनामावलीः कनकाक्षराः ॥८८॥
आकर्षन्नलिनां वृन्दं, दानाह्वातार्थिनामिव। ध्वान्तान्यर्क इवैकोऽपि, जेता सैन्यानि विद्विषाम् ॥८९॥
भूभुजो रणरङ्गाख्यः, स्वनद्घण्टो भटावृतः। पट्टहस्ती महस्तीव्रः, पयःपानाय निर्ययौ ॥९०॥

चतुर्भिः कलापकम् ॥

मार्गे गन्धानुसारेण, गत्वाऽवगणिताङ्कुशः। कल्यपालापणे शुण्डां, स कुण्डान्तःस्थितां पपौ ॥९१॥
सप्रेक्षर इवेभारिः स्नेहसिक्त इवानलः। पक्षीव पन्नगः सोऽभूदुत्कटः सुतरां तदा ॥९२॥
ततः पक्खरभूकम्पकारी गम्भीरगर्जितः। पातिताधोरणोऽधावीद्धन्तुं लोकानिवान्तकः ॥९३॥
कल्पान्तोद्धूतसिन्धूत्थध्वानाभतुमुलाकुलाः। मुक्तस्वस्वापणाः सर्वे, लोका नेशुर्दिशोदिशि ॥९४॥

१ वितर्के। २ मदिराम्। ३ अश्वादिसन्नाहः 'पाखर' इतिलोके। ४ आधोरणः हस्तिपकः। ५ यमः। ६ समुद्रः ॥

मौक्तिकान्युदलाल्यन्त, स्वस्य वर्धापनाय किम् । चीवराणि च नग्नानां, दिग्नारीणां तु दित्सया ॥९५॥
अवाद्यन्त विसारिण्यः[1], सारिण्यस्तैलसर्पिषाम् । वपता कर्षुकेणेवाऽस्यन्त धान्यानि सर्वतः ॥९६॥
गोलकोल्लालनक्रीडाक्रियताऽखण्ड लड्डुकैः । सद्योऽखाद्यन्त पत्रौघाः, सल्लकीपल्लवा इव ॥९७॥
इत्थमुन्मथ्य पाथोधिमिव मेरुश्चतुष्पथम् । सोऽगाद्दुर्गाद्बही रुद्धो, न भटैभतुरङ्गमैः ॥९८॥
तत्र पत्रभृतो भूताधिष्ठितो विटपो वटः । फलरक्तोपलक्षौमच्छन्नक्ष्माच्छत्रतां गतः ॥९९॥
तस्याधिष्ठायको भूतः, प्रभूतानपि देहिनः । शाखाभङ्गाद्यवज्ञातः, पातयत्यापदि क्षणात् ॥१००॥
तं वटं पुरतो दृष्ट्वा, रोषत्रिगुणपौरुषः । शुण्डयोद्दण्डयाऽऽवेष्ट्य, मोटयामास मूलतः ॥१०१॥
करिकष्टागमोर्वीशमुल्प्रयाणानकध्वनिः[2] । कर्णकोटिकटुः कोऽपि, कटत्कारस्तदाऽजनि ॥१०२॥
अथापट्टालकानट्टालकानारुह्य कौतुकम् । विलोकयति लोकेऽगादग्रतो गजपुङ्गवः ॥१०३॥
तावता कुपितो भूतोऽधिष्ठाय त्रिःकृतभ्रमम् । पातयामास भूमौ तं, कः स्वौकः[3]पातने क्षमी ? ॥१०४॥
पतिते पर्वतप्रायकाये च करिनायके । शैलः साकं सकम्पा भूः, कुब्जः शेषोऽप्यजायत ॥१०५॥
तावद्धात्रीधवोऽधावीत्तं चोपेत्य मृतोपमम् । वज्राहत इवामूर्च्छद्राज्यस्य स हि जीवितम् ॥१०६॥
चैतन्ये वालिते चाङ्कदलीदलवीजनैः । हेतुं विज्ञाय विज्ञप्तिं, राज्ञे विज्ञा इति व्यधुः ॥१०७॥

मत्तगजराजेन भूताधिष्ठितवटवृक्षोन्मूलम् ।

---

१ विस्तारिण्यः । २ आनको दुन्दुभिः । ३ स्वस्य ओकः गृहम् तत्पातने ॥

चतुराचेटीवचनेन मन्त्रीश्वरस्य दुकूलानयनम् ।

दोषदावाऽम्बुधारास्तच्चिकित्साः कारयोत्सुकः ॥१०८॥
जीवत्येषः गजो देव !, परं भूतेन दोषितः । दोषदावा{१}म्बुधारास्तच्चिकित्सा कारयोत्सुकः ॥१०९॥
ततो राजा गजाङ्गोच्चं, माषपुञ्जं द्विजन्मनाम् । तद्वाचा दापयामास, मूर्त्तं नु दूरितं निजम् ॥११०॥
प्रतीकारा मणीमन्त्रमूलाद्या अपि कारिताः । उपकाराः खलस्येव, तस्यासंस्तु गुणाय न ॥१११॥
तथाऽप्याशाबलीयस्त्वात्कारयंस्ताननेकशः । मुक्त्वेभमभितः सैन्यं, सौधे भोक्तुं गतो नृपः ॥११२॥
चिन्ताचान्तं च तं चेटी, चतुराख्याऽब्रवीदिदम् । नाऽमात्येन समं देव !, तुल्योऽन्यः शीललीलया ॥११३॥
ततस्तत्परिधानेन, च्छन्नोऽतिशायिना गजः । सूर्यालोकेन भूलोकः, इव निर्दोषतां गमी ॥११४॥
तदीयपरिधानोरुचीरेणाऽऽच्छादिता सती । लीलावत्यभवद्येनापेतप्रेतज्वरा पुरा ॥११५॥
भूपालानिष्टलीलावत्यभिधादानशङ्किता । स्थिता सा चेयदेवोक्त्वाऽपृच्छत् किंचिन्नृपोऽपि न ॥११६॥
दध्यौ राजा त्विदं कुर्वं, दास्या अप्युक्तमेकशः । पूरेण प्लाव्यमानो हि, कुशमप्यवलम्बते ॥११७॥
प्राहिणोत् पेथडस्याथाऽऽनेतुं निवसनं स{२} ताम्{३} । सा गत्वाऽमार्गयद्धेतुमुक्त्वा तद्दयितान्तिके ॥११८॥
ब्रह्मव्रतवता देवपूजासु परिधानतः । पावितं मन्त्रिणा दिव्यदुकूलं तत्प्रियाऽर्पयत् ॥११९॥
राज्ञा चादाय तच्चीरं, गतेन करिणोऽन्तिके । जनैराच्छादयामासे, तेन{४} रक्तेन सोऽसितः ॥१२०॥
आदाय हृदये विद्युद्वल्लभामपचापलाम् । विश्रान्तः स तु जीमूतो, निद्रानिस्तनितोऽवनौ ॥१२१॥

१ मेघधाराः । २ राजा । ३ दासीम् । ४ तेन रक्तेन वस्त्रेण व्याप्तः ॥

शुद्धशीलभवाद्वस्त्रप्रभावादथ दुःसुरः । तं तत्याज विपावेगः, इवाङ्गं जाङ्गुलीजपात् ॥१२१॥
क्षिप्त्वा चीरं क्षितेः पीठादुत्थितेऽभूद्विपाधिपे । औपपातिकपल्यङ्कादिव देवे जयारवः ॥१२२॥
हयहेषा-गजोद्गर्जा-भटेभारिरवैः समम् । सद्योऽवाद्यन्त वाद्यानि, रोदःस्फोटकरस्वरैः ॥१२३॥
सहस्रेण मनुष्याणां, चीरसंबन्धबोधनात् । दुधुवुः के न मूर्द्धानं, मन्त्रिशीलप्रशंसिनः ॥१२४॥
गजं श्रृङ्गारितं राज्ञि, तमध्यास्य च मन्त्रिणः । आसितुं स्वान्तिके गाढाग्रहं कुर्वति सोऽब्रवीत् ॥१२५॥
गुरूपान्ते गजारोहनियमोऽग्राहि यः पुरा । स कथं भज्यते देव !, भग्नो हि भृशदुःखदः ॥१२६॥
आगतः पुंभवं रत्नद्वीपं संसारसागरे । लात्वा नियमरत्नानि, यत्नाद्रक्षेद्विचक्षणः ॥१२७॥
तदा सौवर्णपर्याण-कशा-खलिन-शालिनि । पट्टस्यारोहयच्चङ्गादरो हयवरे नृपः ॥१२८॥
ततस्तावुच्छ्रितच्छत्रश्रीकरीकौ सचामरौ । तेजःकीर्त्तिजितार्केन्दू महेनाऽऽजग्मतुः पुरे ॥१२९॥
परिधाप्य च पश्चाङ्गं, दत्तटङ्कैकलक्षकम् । विससर्ज नृपोऽमात्यं, मानितस्तुतसत्कृतम् ॥१३०॥
प्रमोद-कतक-क्षोद-प्रसन्ने हृत्सरोवरे । मीमांसाराजहंसीयमाजगामाथ भूभुजः ॥१३१॥
यशोऽमात्यस्य मात्यस्य, विश्वे तावन्न शीलजम् । लीलावत्यप्यदोपैव, तल्पेषाव्यूतिनीतितः ॥१३२॥

पेथडची-वरेण गज-राजस्य स्वास्थ्य प्राप्तिस्तेन पेथडस्योपरि राज्ञः बहुमा-नम् ।

---

१ बोधनकर्त्तरि तृतीया । २ राजमन्त्रिणौ । ३ विचारणा । ४ या लीलाकलिता सा दोपवती स्यादेवेतिविरोध', परिहारस्तु लीलावती नाम्नी राज्ञी पुरुपान्तरससर्गदोपरहिता तल्पेपाव्यूतिनीतितः, तल्पेपयो र्या व्यूतिस्तन्न्यायेन मञ्चक तत्काष्ठानां पारस्परिकी घटना यद्यपि लीलावती तथापि न सदोपा इत्यर्थः॥

लीलावती स्मरणेन नृपस्य चित्त-पीडा ।

परं तापोपशान्त्यर्थं, चीरमानाख्य मन्त्रिणः । कायमाच्छादयामास, स्वं तदा सा न संशयः ॥१३३॥
विपदम्बा कदम्बा तु, च्छलमासाद्य नन्विदम् । पापा तां पातयामास, सव्यासव्यसनोदधौ ॥१३४॥
कलावत्या भुजच्छेदो, वनं लक्ष्मणरामयोः । कुणालस्यान्धतेत्याद्यं, सपत्नीवीरुधः फलम् ॥१३५॥
विचार्यैवं च सा चेटी, चतुराऽऽकार्य भूभुजा । पृष्टाऽऽख्यच्चीरवृत्तान्तं, यथाभूतमनूतनम् ॥१३६॥
मत्वा भूपस्य दुःखौघमागतं किमु वीक्षितुम् । अक्षमोऽस्तङ्गतस्तत्रावसरे वासरेश्वरः ॥१३७॥
युगान्तोदधितोयानामिव प्रसरतां सताम् । शिरोऽभून्नान्धकाराणां, धकाराणामिव क्वचित् ॥१३८॥
निरागोवल्लभात्यागोत्पन्ना खिन्नात्मना घना । अन्वभूयत भूपेन, वियोगार्तिस्तदा यथा ॥१३९॥
दुकूलकुसुमाल्यङ्कः, पल्यङ्कः प्रज्वलच्चिता । मारिस्तिमिरभिन्दूत्थाः, रुचयस्तस्य सूचयः ॥१४०॥
निःश्वसित्यायतं रोदित्यान्दोलयति मस्तकम् । शून्यमालोकते कोपं, करोत्यालापनादिषु ॥१४१॥
न ब्रूते नात्ति शेते नेत्याद्यचेष्टयत चामुना । तुरुष्कस्येव रागस्य, विपरीता हि रीतयः ॥१४२॥
किं बहूक्तेन वा सर्वभावेष्वरतिभाजनम् । स्तोकाम्भोमत्स्यवत्सोऽतिव्याकुलस्तां निशां लँलौ ॥१४३॥
वादितेषु च वाद्येषु, पर्षल्लोके समागते । यातेऽह्नः प्रथमे यामेऽप्याजगाम बहिर्नहि ॥१४४॥

---

१ यथा प्राच्यां लिप्यां धकारवर्णस्य शिरः स्थाने किमपि चिह्नं न भवति तथैव अन्धकारस्य प्राचुर्यात् किमपि शिरोभूतं नाभूत् सूर्याभावेन स्वातंत्र्येणैव तमः सर्वत्र प्रासरन् । २ आयतमिति दीर्घं । ३ यवनस्य । ४ रात्रिमतिवाहयामासेतितात्पर्यम् ॥

राज्ञोऽद्यापि सभाप्राप्तौ, निद्रा वपुरपाटवम् । रामासक्तिः किमन्यद्वा, निमित्तमिति चिन्तयन् ॥१४५॥
तदा मध्ये गतोऽमात्यः, श्यामास्यं चिन्तयाऽऽकुलम् । हस्तन्यस्तकपोलं तं, पल्यङ्कस्थमभाषत ॥१४६॥
दिव्यनारीतुरङ्गेभवैरि-देश-रणादिषु । कस्मिन्नेतावती चिन्ता, तव देवाऽद्य विद्यते ॥१४७॥
जगौ राजा सनिःश्वासं, धीनिधे ! निरवासि या । प्रेयसी तां विनाऽहं न, शक्तो धर्तुमसूनपि ॥१४८॥
निष्प्रत्नं[1] रमणीरत्नं, सा सपत्नीगिरा मया । निरवासि निरागास्तद्धोक्ष्ये वीक्ष्यैव तां खलु ॥१४९॥
इत्युक्ते साऽऽश्रुभूपेन, सोऽवग् मा भूः प्रभोऽर्तिभूः । तामानेतुं विधास्येऽहमुद्यमं सर्वसाधकम् ॥१५०॥
उद्यमं कुर्वतां पुंसां, बिडालो हि निदर्शनम् । जन्मप्रभृति गौर्नास्ति, क्षीरं पिबति नित्यशः ॥१५१॥
उद्यमाद्द्रौपदीसीतादयोऽपि वलिता यदि । तदा लीलावतीं देव !, गणयैवागतां गृहे ॥१५२॥
कुरु किन्तु किमप्युच्चैः पुण्यं येनोद्यमोऽपि मे । अवन्ध्यः स्याद्यतः पुण्यैरेव सर्वार्थसिद्धयः ॥१५३॥
लक्ष्मीशृङ्खलनं विघ्नस्खलनं कीर्त्तिखेलनम् । कर्मप्रेङ्खोलनं पुण्याज्जायतेऽन्यदपीप्सितम् ॥१५४॥
किं तद्वदेति तत्पृष्टः, पुनः सोऽभणदाभवम् । स्वदेशे पर्वपश्चाहं, वारय व्यसनानि भोः ॥१५५॥
[2]कलङ्कयन्ते कुलानि स्वे[3], [4]मलिन्यन्ते च धातवः । [5]भवावासक्षणाभास-सप्तव्यसनजैरघैः ॥१५६॥

१ नूतनम् । २ कलङ्कीक्रियन्ते । ३ स्वकीयाः । ४ मलिनीक्रियन्ते । ५ भव एवावासस्तस्मिन् मिथोत्सवरूपेभ्यः सप्तभ्यो व्यसनेभ्यो जातैरित्यर्थः ।

नलादीनामिवानर्थं, कुर्वतेऽत्रापि तान्यतः । चौलुक्यः खरमारोप्य, चकर्षाविषयादपि ॥१५७॥
ततः पल्लव्यमानाशावल्लिः स्वीकृत्य तद्वचः । प्राप च्छत्राप्यतुच्छश्री, राजाऽमात्यसखः सभाम् ॥१५८॥
अथ भोक्तुं गतः सायमागत्य क्षितिपाय सः । न्यविवेददिदं देवी, दिष्ट्याऽऽगादात्मनो गृहे ॥१५९॥
हासो वा सत्यमित्युक्ते, राज्ञा हर्षोन्मिषद्दृशा । प्रत्याय्य नियमाद्वार्ता, तेन श्रीः पुर्यकार्यत ॥१६०॥
वर्षीभूतनिशो हर्षी, भूरिश्रीरष्टमे दिने । प्रातः पृथ्वीधरावासं, धरावास्तोष्पतिर्ययौ ॥१६१॥
प्रतिपच्चन्द्रलेखेव, निस्तेजास्तेन दुर्बला । तत्रालोकि सिताकल्पा, लीलावत्यकलङ्किता ॥१६२॥
द्वात्रिंशट्टङ्कलक्षाणि, दुकूलाभरणैस्तदा । ददौ देव्यै नृपो मूढाः, ददतेऽसूनपि स्त्रियै ॥१६३॥
भोजं माघ इव स्वादुश्रितभोज्यादिना स तम् । सप्रियं प्रीणयामास, प्रास्थिताऽथ क्षितेः पतिः ॥१६४॥
निर्गतो गजमारूढः, पुरस्यालङ्कृतप्रियः । तदावासादसावात्तलक्ष्मीरब्धेरिवाच्युतः ॥१६५॥
उद्धुर्द्धापनसुत्तूर्यारवमुत्तोरणध्वजम् । सौधे सोत्सवमानिन्ये, नवोढ इव तां वधूम् ॥१६६॥
शर्करामरिचप्रायप्रेमरोषणतो गताम् । राज्ञीं निन्येऽनुनीयाऽद्य राजेत्याख्यज्जनः पुनः ॥१६७॥
तस्यामापदभूच्चित्रं, मानपूजायशःकृते । चूते लूकेव तीव्राऽपि, रूपगन्धरसश्रिये ॥१६८॥
स्याल्लोकोत्तरसूत्रस्य, यद्वाऽऽपदपि संपदे । अग्नौ मग्नस्य नैर्मल्यमग्निशौचस्य वाससः ॥१६९॥

राज्ञः लीलावत्यै प्रभूतं प्रीतिदानम् ।

---

१ सपल्लवीक्रियमाणा आशा वल्लिरस्य । २ पृथिवीन्द्रः । ३ श्वेतवेषा । ४ प्रचलितः ॥

पञ्चमः तरङ्गः ।

भूपनिर्भर्त्सिता भीता, कदम्बा तु पलायिना । अभ्याख्यानादिपापं हि, प्रायेणेहापि भुज्यते ॥१७०॥
ततः स्वकारितस्वर्णपार्श्वबिम्बार्चने रता । अनुभूतप्रभावश्रीनमस्कारजपोद्यता ॥१७१॥
वस्त्राऽपूतपयो-मांस-रजनीभोजनादिमुग् । रसायःस्वर्णनान्यायाज्जैनिता मन्त्रिकान्तया ॥१७२॥
सादिपादातिकप्रौढप्रमदावृन्दमध्यगा । चेटीभिरभितः स्वर्णकम्बोत्सारितपूरुषा ॥१७३॥
स्फूर्जत्तूर्यध्वनिर्याति वर्यपर्यङ्किकासना । चैत्यानि वन्दितुं नित्यं, राज्ञी पञ्चसु पर्वसु ॥१७४॥

लीलावत्याः अग्रमहिषीपदे स्थापना ।

तामेवं जिनधर्मकर्मणि रतामालोक्य लोकंपृणः,
पृथ्वीन्दुः सुपरि स्म पृच्छति जगौ चेदं वधूमण्डना ।
श्रेयोऽभून्मम तेऽप्यमुष्य वशतः स्यां तत्कृतघ्ना कथं ?,
श्रुत्वेदं मुमुदे नृपोऽथ निदधे तां पट्टराज्ञीपदे ॥१७५॥

इति युगोत्तमगुरुश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टालङ्कारक्रमेण श्रीरत्नशेखरसूरिविनेयपण्डितनन्दिरत्नगणिचरण-रेणुरत्नमण्डनविरचिते मण्डनाङ्के सुकृतसागरे पेथडब्रह्मव्रतोच्चार-तत्प्रभावकथनो नाम पञ्चमस्तरङ्गः ॥५॥



---

१ अगलितजलम् । २ जैनीकृता । ३ अश्ववारः । ४ तवापि मन्त्रिणः ॥

॥ अथ पञ्चपर्व-सप्तव्यसन वारणादि कथनो नाम षष्ठस्तरङ्गः प्रारभ्यते ॥



श्रेष्ठीपद्माकरस्य धूर्तता ।

अथाक्षिशरशैलेशरत्नाङ्क (२५८११ १४)तिथिपञ्चके । यः सप्तव्यसनेस्वेकमपि सेविष्यते क्वचित् ॥१॥
समं वित्तेन तस्यासून्, राजा लास्यत्यसंशयम् । इत्युद्घोषानुगो राज्ञा, पटहोऽवाद्यवन्तिषु ॥२॥
कुर्वाणे पञ्चपर्व्या च, राज्ञि तद्वारणादरम् । आस्तां गुप्ततदासेवा, तद्वार्ताऽप्युज्झिता जनैः ॥३॥
धूर्तः पद्माकरो नाम, प्राचीनो मण्डपेऽन्यदा । प्राप धीकौमुदीपूरस्मेरकैतवकैरवः[1] ॥४॥
गत्वा स वणिजो हट्टे, शालिदालिघृतादिभिः । टङ्कावुत्पाद्य कौटिल्यकोटीपटुरुवाच तम् ॥५॥
लभ्यं ते दापयामि स्वं, प्रेषयाङ्गभुवं सह । तेन च प्रहितं पुत्रं, लात्वाऽगाद्दौष्यिकापणे ॥६॥
तत्राप्यादाय मायावी, चीवराणि वराणि सः । बभाषे दौष्यिकं पार्श्वे, पुत्रोऽयं मे स्थितोऽस्ति ते ॥७॥
वासांस्यहं तु प्रेयस्यै, दर्शयित्वैमि सत्वरम् । एवमुक्त्वा च मुक्त्वा तं, गृहीतसिचयो ययौ ॥८॥
जातायां भुक्तिवेलायां, दौष्यिकेण समं पुनः । पुत्रार्थं वणिजो जज्ञे, विवादो हास्यदो नृणाम् ॥९॥
कारयित्वाशनं भुक्तः, कृतनेपथ्यडम्बरः । वेश्यायाः कामकान्तायाः, कितवोऽथ गृहं गतः ॥१०॥

---

१ विकसितकपटमेव कमलः ॥

वञ्चयित्वाऽर्जितं वेषं तत्रस्थः स पणस्त्रियाः। प्रीणितोऽदत्त धिक् तं तु, गोवधद्विकपोषकम् ॥११॥
येऽपि वैपिनधर्म्यर्थेऽङ्गं, व्ययं वेश्यासु कुर्वते। चम्पाले जातरूपस्य, मल्लीं जाल्माः क्षिपन्ति ते ॥१२॥
यासां काऽप्याऽऽर्द्रता तावद्यावद्दानाम्बुवृष्टयः। वेश्यासु मरुदेश्यासु, तासु रज्येत कः सुधीः? ॥१३॥
वेश्या वेषात्तविश्वस्ता, हेमकुण्डलमेकदा। पर्यधान्मणिमुक्ताढ्यं, रम्यं राजाङ्गजार्पितम् ॥१४॥
दृष्टं तत्कुण्डलं यावद्धामध्वस्तार्कमण्डलम्। तावद्धूर्तोऽभवल्लिप्सुः, प्रकृतिः केन लुप्यते ॥१५॥
ददौ फालां फलायास्प्राभवोऽपि हि पावनिः। बिडालो लास्यलग्नोऽपि, दधावोन्दरदर्शने ॥१६॥
जगौ चैकं न ताडङ्कं, सुभ्रु! शोभावहं ततः। अर्पयाऽस्यानुसारेण, कारयामि यथा परम् ॥१७॥
सा कपेरिव पक्काम्रं, तदा तस्य तदार्पयत्। वञ्चकः पुनरादाय, जगामाऽपुनरागमम् ॥१८॥
इतश्च प्राप दीपाली, पालीमुल्लङ्घ्य सुजलम्। हृत्सरस्सु नृणां यत्र, प्रावृषीव प्रसर्पति ॥१९॥
सर्वेषां मण्डनं दीपः, शोकाभावः शुभाशनम्। मुखे रङ्गः सुवेषश्च, प्रायो यत्रैव पर्वणि ॥२०॥
कौतुकं यत्र मुक्ताः स्त्रीढिङ्कुलीपाणिगोफणैः। जीवयन्ति जनं लक्ष्यीकृतं लड्डुकगोलकाः ॥२१॥
चतुर्दश्यां च दीपाल्यागमात्कोऽपि न तद्दिने। व्यसन्यपि नृपाद्भीतश्चकार द्यूतखेलनम् ॥२२॥
श्रीपालश्रेष्ठिनं श्रुत्वा, श्रियाऽऽढ्यं द्यूतलालसम्। धूर्तस्तु धनिवेषेण, तद्गृहेऽगाद्दिदीविषुः ॥२३॥

पद्माकर-धूर्तस्य श्रीपालश्रेष्ठि-गृहे गमनम्।

---

१ मूर्खाः। २ प्राप्तैश्वर्योऽपि। ३ हनुमान्। ४ स्त्रीक्रीडासंसक्तोऽपि।

तत्र लब्धासनोऽवादीत्तं न किं दीव्यतेऽद्य भोः ! । सर्वद्यूतदिनानां हि, नायकोऽद्यतनो दिनः ॥२४॥
श्रेष्ठिनोचेऽन्नृतं नेदं, नियोगोल्लङ्घने पुनः । भूपते यादृशी भीतिर्यमस्यापि न तादृशी ॥२५॥
सोऽवदद्यदि जानाति, भूभर्त्ता भीयते तदा । परं दीविष्यते गुप्तं, तथा ज्ञाता यथा न सः ॥२६॥
इत्युक्त्वा दर्शिते तेन, पणार्थं कुण्डलेऽमले । प्रिययाऽऽनाययामास, पट्टपाशकखेलनीः ॥२७॥
उत्कल्लोलोऽभवल्लोभस्तस्य रत्नोडुमण्डितम् । दृष्ट्वाऽर्णव इवैणाङ्कमण्डलं तद्धि कुण्डलम् ॥२८॥ यतः—

"निर्दयत्वमहङ्कारस्तृष्णा कर्कशभाषणम् । नीचपात्रप्रियत्वं च, पञ्च श्रीसहचारिणः ॥९८॥"

ततः संघटितस्फार-कपाटार्गलतालकौ । तौ लग्नौ दीवितुं दक्षावक्षानक्षामकाङ्क्षया ॥२९॥
कियन्तं समयं धूर्तश्रेष्ठिनोरन्तरे जयः । ऐहिरेयाहिरं चक्रे, कपिः पादपयोरिव ॥३०॥
वञ्चको लगयित्वाऽथ, श्रेष्ठिनश्चक्षुरन्धिकाम् । लग्नो जेतुं तदज्ञातैः, पाशादिकपटैर्मुहुः ॥३१॥
हारयित्वा धनं धान्यं, तदानीं भूषणाद्यपि । पत्न्या बहुनिषिद्धोऽपि, रसे सौधेन धन्यसौ ॥३२॥ यतः—

"मिष्टा रागेषु वेराटी, मिष्टा हारिर्दुरोदरे । मिष्टं रोषणकं स्नेहे, मिष्टा मारिर्विरोधिनि ॥९९॥"

हारिते सति हर्म्येऽपि, धूर्तः स्माह कथं तु वः । निर्यातेत्युच्यते किन्तु, कुरुताऽथ यथोचितम् ॥३३॥
निशापश्चिमयामार्धे, सोऽग्रेकृत्य प्रियां तदा । निर्गतोऽकिञ्चनः सौधाद्यथा चौरो विभातितः ॥३४॥

धूर्तेन सह द्यूते श्रीपालस्य सर्वस्वहारणम् ।

---

१ आज्ञोल्लङ्घने । २ चतुष्पटीपाशकशारीः । ३ संयोजित । ४ गतप्रत्यागतम् । ५ अन्धीकरण्या विद्ययाऽन्धताम् । ६ युष्माकम् । ७ जातः प्रभातः ।

सचिन्तो बहिरायातो राजाद्यागमशंसिनम् । तरङ्गतरलाऽश्वीयखुराणामशृणोद्रवम् ॥३५॥
संबन्धस्तस्य चायं यल्लीलावत्यभवद्गता । मन्त्रिकान्तागिरा तुर्ययामे चैत्यानि वन्दितुम् ॥३६॥
प्रागात्तकुञ्चिकाचक्रा, द्वाराण्युद्घाट्य तेषु सा । सिद्धेः स्वात्मप्रवशाय, द्वारं समुदजीघटत् ॥३७॥
मुख्यबिम्बपुरस्तेजोध्वस्तध्वान्तं निरञ्जनम् । रत्नदीपकमेकैकमनर्घ्यं नेऽवमुञ्चत ॥३८॥
शत्रुञ्जयावताराख्ये, मुख्ये चादीशमन्दिरे । विदधे दीप्तिमल्लक्षसौवर्णयव-ढौकनम् ॥३९॥
लक्षमानं जिनस्याग्रे, यो लक्षप्रतिपद्दिने । धान्यं मुञ्चत्यमुत्रेहाऽमात्रधान्यो द्विधाऽपि सः ॥४०॥
भूयिष्ठं कीटकाऽदुष्टमुत्कृष्टं मुष्ट्यनाहितम् । तद्वर्षे तस्य सुप्रापं, धान्यं स्यादवमेऽपि हि ॥४१॥
वयसा श्लोकवर्णाङ्क-वर्षा हर्षात्पुरोऽर्हतः । द्वात्रिंशद्बीजपूराणि, सौवर्णानि च साऽमुचत् ॥४२॥
ढौकितैकफलोऽप्यर्हन्ननन्तफलदायकः । भव्यास्तड्ढौकयन्तां भावाज्जिनाग्रे फलमुत्तमम् ॥४३॥
गोधूमसूढकस्याग्रे, जिनं राश्यक्रियन्त च । मोदका मधुरस्निग्धवृद्धद्धवलवर्तुलाः ॥४४॥
इत्यादिविधिना देवी, कृतार्थीकृततद्दिना । अश्ववारपरीवारवारवध्वावृताऽचलत् ॥४५॥
तस्याश्चागमने श्रुत्वा, श्रेष्ठिनोऽश्वखुरारवम् । गतश्रीचालने दूनी, बुद्धिस्तस्योदपद्यत ॥४६॥

शत्रुञ्जयावतारचैत्ये लीलावत्याः सौवर्णलक्ष-यव-द्वात्रिंशद्बीजपूरादि ढौकनम् ।

---

१ समूहा । २ चैत्येषु । ३ लीलावती । ४ अपरिमितं धान्यं यस्य सः, पक्षे अकारमात्रेण विशिष्टो धान्यशब्दो वाचको यस्य स तथाविधः । ५ मुष्टिमध्येऽस्थापितम् । ६ दुर्भिक्षेऽपि ॥

तावता देव्यपि व्यापिदीपकोद्द्योतदर्शिता । आययौ लम्बकम्बाभिस्ताडनेऽपि स चामिलत् ॥४७॥
जनपार्श्वात्तदा देव्या, स्थापिते स्वसुखासने । श्रीपालो दूरगस्तस्याः, कृपालोरालपद्यथा ॥४८॥
मयैकोऽप्यकृतो मातरन्यायः फलितश्च सः । निषिद्धं भूभुजा द्यूतं खलितं श्रीरहारि च ॥४९॥
द्यूतकूजितसर्वस्वः, स धृतोऽपि च्छुटिष्यति । निर्गतस्य द्विबाहुभ्यां, धरणे मे तु का गतिः ? ॥५०॥
क्षमयित्वैकमाग[1]स्तद्रक्ष मां बिभ्यतं नृपात् । पतितानेकशो दन्तानादत्ते पुनराननम् ॥५१॥
साऽभाणीदभयं ते मा, भैषीः क्व कितवः स तु । सौधेऽस्तीत्युदिते सुतं, पत्तिभिस्तमबन्धयत् ॥५२॥
राज्ञी गेहागता राज्ञे, वृत्तान्तं विनिवेद्य तम् । आर्पयत्तौ जगौ चाद्य, मुञ्चतोभावपि प्रभो ! ॥५३॥
श्रेष्ठी तावत् स्वयं सम्यगुक्तस्वकृतदुष्कृतः । आलोचक इवाराद्धा, स्यात्तद्दण्डोचितः कथम् ? ॥५४॥
प्रसद्य तव दास्या मे, वराकोऽन्यस्तु मुच्यताम् । मैतद्दण्डोत्थपापान्मेऽभूदात्मा नरकाऽतिथिः ॥५५॥
राजाऽऽख्यद्रोषरक्ताक्षो, ब्रूथा मैतत्कृते बहु । मोक्ष्ये हि नैकमप्याज्ञाभङ्गाच्छत्रुक्रियोचितम् ॥५६॥ यतः—
"आज्ञाभङ्गो नरेन्द्राणां, वृत्तिच्छेदो द्विजन्मनाम् । पृथग्शय्या च नारीणामशस्त्रवध उच्यते ॥१७॥"
ततस्तदशुभायैकचित्तं मत्वा महीपतिम् । कृत्वा रोषणकं राज्ञी, ययौ सानुशयाशया[2] ॥५७॥
द्वित्राऽहातिक्रमेऽप्योज्झद्यदा रोषं न सा नृपः । उपशम्याजगामारा[3]त्तस्या मारार्त[4]हृत्तदा ॥५८॥ यतः—

१ अपराधः । २ सरोपाशया । ३ समीपे । ४ कामाकृष्टमनाः ॥

"त्रिलोकी तृणवद्येषां, करवाले करस्थिते । तेऽपि कुप्यत्प्रियानेत्र-त्रिभागभ्रान्तिभीरवः ॥९८॥"
सोऽवक् तवोक्त्या मुक्तौ तौ, जीवन्तौ जीवितेश्वरि ! । परं कर्त्ताऽग्रतो द्यूतनिवृत्त्यै तद्विगोपनम् ॥५९॥
तदा देव्यपि पर्वाहव्यसनोच्छेददीप्तये । संसेहे तदथोर्वीशो, यच्चकार तदुच्यते ॥६०॥
शारिहारमुदारं स, द्यूतपट्टकनायकम् । श्रेष्ठिनोऽनिष्ठपत्कण्ठे, दत्तं किं दुर्गतिस्त्रिया ॥६१॥
खरमारोपितोऽन्योऽपि, तदा दुर्वेषभागभात् । सप्तमश्वभ्रपुर्या नु, प्रयाणाय परायणः ॥६२॥
श्रेष्ठी पत्तिः स चारूढः, पुरस्त्राट्कारिकाहलौ । लोकलक्षे क्षितौ भूपोऽविभ्रमत् पूःपथेषु तौ ॥६३॥
अर्धमादाय सर्वर्द्धेर्मुक्तः श्रेष्ठी [3]स्वनीवृतः । धूर्त्तः कृष्टो [4]विखूकृत्य, द्यूतं धिक् पुंविगोपकम् ॥६४॥ उक्तं च–
+"जूएण जुव्वणेण य, दासीसंगेण धुत्तमित्तेण । उब्भेउ अंगुलिं सो, अवसाणे जो न हु विगुत्तो ॥१०॥"
धूर्त्ताप्तं कुण्डलं देव्यै, राजाऽदात्सा च तादृशं । प्रथमिण्यै सहान्येन, सा त्वारोहयदर्हतः ॥६५॥
सुवर्णमठितोऽश्माऽपि, सत्यं स्त्रीणां हि वल्लभः । परमस्वर्णभूपासु, गुणेष्वेवादरो वरम् ॥६६॥
तदनु व्यसनासेवां, गुप्तामाशङ्क्य पर्वसु । दत्तोद्घाटासिमारक्षं, निरमाज्झाञ्झणं नृपः ॥६७॥
स भ्राम्यत्यभितो व्यक्तं, गूढं निशि दिवा स्वयम् । पुरग्रामेषु दुर्धर्षो, व्यसनस्थानवीक्षकः ॥६८॥

तत्कुण्डल प्रथमिण्यै दत्तम् व्यसनशुद्ध्यर्थं झाञ्झण स्य पुरग्रामेषु भ्रमणम् ।

---

१ राजा । २ वितर्कः । ३ स्वदेशान् । ४ नासिकारहितं कृत्वा ॥

छाया– + द्यूतेन यौवनेन च दासीसङ्गेन धूर्तमित्रेण । ऊर्ध्वीकरोतु अङ्गुली स अवसाने यो न खलु विगुप्तः ॥

तदा च मण्डपे श्राम्यल्लक्ष्मीविश्राममण्डपे। खर्परान्वयजाः स्तनाख्यः स्तैन्यं वितन्वते ॥६९॥
वसुधावासवे सायं, सर्वावसरमागते। प्रणनामाऽन्यदा चौरोच्चाटितः पूर्महाजनः ॥७०॥
यथाऽर्हासनदानाद्यैः, सत्कृतः कृतढौकनः। पृष्टागमनिमित्तः क्ष्मानाथेनाथेदमब्रवीत् ॥७१॥
स्वामिन्नपूर्वं पूर्वन्यामस्यां दस्युदवाग्निना। असह्यं दह्यमानाः स्मो, वयं ते रोपकोपमाः ॥७२॥
क्वापि स्थानान्तरे तस्मादस्मानुर्वीश! रोपय। चौरात्त्वत्तश्च निःसाराः, स्थास्यामस्त्विह नो वयम् ॥७३॥
श्रुत्वेत्यारक्षमाकार्य, भूपः कोपाज्जगाद तम्। किं रेऽधम! सुखं शेषेऽशेषां मद्ग्रासभुग् निशाम् ॥७४॥
यन्मे काष्ठघुणन्यायाद्दस्युनाऽयं दिने दिने। निःसारः क्रियते प्राणप्रियः सर्वो महाजनः ॥७५॥
पुरारक्षोऽवदद्देव!, किं कुर्वे सकलां निशाम्। पश्यन्नपि न पश्यामि, तं चौरं चत्वरादिषु ॥७६॥
ग्रासं भुक्त्वाऽद्य कुर्वे किमित्युक्त्वा न छुटिष्यसि। जिजीविषसि चेच्चौरं, कृषेत्युक्तेऽथ भूभुजा ॥७७॥
गोगादेः स्माह मात्सर्याच्चौर्यं पर्वतिथिष्वपि। जायतेऽतः सहायोऽस्य, झाञ्झणोऽपि भविष्यति ॥७८॥
तद्वाचाऽऽकार्य भूमीभुग्, तमप्याख्यद्युवामुभौ। कुर्वाथां सर्वथा वीततस्करोपद्रवं पुरम् ॥७९॥
सोऽजल्पत्किमियत्यर्थे, द्वयोः स्वामिन्नुपक्रमः। एककोऽपि त्वदादेशाद्द्वितीयोऽदः करिष्यति ॥८०॥
मत्वोद्योगिनमादिक्षत्तदा तं[2] सं[3] त्ववग् बली। सप्ताहान्तर्द्धरे तं[4] न, चेत्तद्दण्ड्योऽस्मि तत्पदे[5] ॥८१॥

१ नगरीरूपाटव्याम्। २ झाञ्झणम्। ३ झाञ्झणः। ४ चौरम्। ५ चौरस्थाने॥

ततः क्लृप्तप्रतिज्ञं तं, सत्कृत्य स महाजनम् । विससर्ज नृपः सोऽथाऽऽरेभे तद्धरणोद्यमम् ॥८२॥
पश्यन् प्रतिपथं प्रत्याऽऽपणं प्रतिनिकेतनम् । बभ्राम निशि दुर्वारवीरवारः सदीपिकः ॥८३॥
क्वापि नापदपुण्योऽर्थमिव तं स तु साहसी । षड् वैयग्र्याद्व्यतीयुश्च, क्षणा इव दिना अपि ॥८४॥
राजादेशादिनात्सप्तदिनीं गणितपूर्विणः । तेनिरे तस्कराः स्तैन्यं, तस्यां न धृतिशङ्किनः ॥८५॥
अष्टमे त्वह्नि निःशङ्कास्तेऽर्धरात्रे तमोऽम्बुधौ । भिन्नभिन्नपथैः पुर्यामाजग्मुश्चत्वरे त्रयः ॥८६॥
तस्मिंस्तु स्वप्रतिज्ञायाः, सप्तमेऽहनि झाञ्झणः । एकाक्येव तदा रेनवेषस्तत्रायययावभीः ॥८७॥
दृष्ट्वा तांश्चौरसंज्ञां सोऽकरोत्तां ते प्रतिव्यधुः । शक्तिः का काऽस्ति वस्तानित्यप्राक्षीन्मिलितान् सुधीः ॥८८॥
शकुनैः सर्वविद्व्याश्मना तालकभञ्जकः । सकृदाकर्णिते शब्दे, पुंस्त्रियोरुपलक्षकः ॥८९॥
इति प्रत्येकमात्मात्मशक्तिमाख्याय तैस्त्रिभिः । ब्रूहि भोस्तव काऽस्तीति, पृष्टः श्लिष्टमुवाच सः ॥९०॥
योगिना गुरुणा दत्ता, करुणाख्या ममौषधी । तत्प्रभावादहं येषु, स्यां ते वध्या न दस्यवः ॥९१॥
तद्विशामो नृपस्यैव, सौधेऽद्याऽनिधनर्द्धिनि । मुक्त्वा मुक्ताचयं पाणे, गुञ्जापुञ्जाय कः क्षिपेत् ? ॥९२॥
ततो हृष्टाः समं तेन, ते नरेशाऽऽलयं प्रति । यावच्चेलुः शिवा शब्दं, तावच्चक्रे सुदिग्गता ॥९३॥
तदा शाकुनिकेनोचे, शकुनेनाऽमुनाऽऽत्मभिः । लास्यन्ते मणयोऽनर्घ्याः, स्थास्यन्ति न पुनर्दिनम् ॥९४॥

झाञ्झणस्य स्तैन्यार्थं चौरैः सह राजभवने गमनम् ।

---

१ सप्तदिन्याम् । २ धारणशङ्किनः ॥

झाञ्झणोऽभिदधावेवं, चेत्तद्धित्वा मणीगणम् । लास्यामः क्षौमहेमादि, सौधः सर्वाकरः स हि ॥९५॥
मन्त्रिसूस्तानथानैषीदेकस्मिन् कोशवेश्मके । चत्वारस्तत्र चाऽत्रस्ताः, विविशुर्भग्नतालकाः ॥९६॥
भैरवी-रवमाकर्ण्य, पुनः शकुनविज्जगौ । भटः कोऽप्यत्र भूपस्य, भोः! पश्येन्मा विलम्ब्यताम् ॥९७॥ यतः–
"चौराणां धार्मिकाणां च, वैरिणां प्राप्तवैरिणाम् । परस्त्रीपार्श्वगानां च, विस्तरः स्वार्थघातकः ॥१००॥
श्रुत्वेदं सचमत्कारस्तेभ्यः पूर्वमुपाददे । कूटपाटच्चरः पेटां, चपेटां दौस्थ्यकुट्टने ॥९८॥
तामनिर्धारितार्थयामेकैकां तदनु त्रयः । गृहीत्वा सह तेनागुः, पुनः क्षेमेण चत्वरम् ॥९९॥
भणत क्वात्मनां भूयो, भविता प्रियमेलकः । कूटप्रीत्येति तत्पृष्टास्ते विश्वस्तास्तमभ्यधुः ॥१००॥
ये माणिक्यचतुष्काग्रे, बीजपूरकराः प्रगे । आयान्ति ते वयं तत्रागच्छेस्त्वमपि तस्करः ॥१०१॥
भिन्नमार्गास्ततो जग्मुस्ते परत्रेव जन्तवः । सोऽप्यगाल्लब्धचौरः स्वं, धामात्तनिधिवन्मुदा ॥१०२॥
प्रातः पृथ्वीधरो दृष्ट्वा, श्रीगृहं भग्नतालकम् । हृतरत्नचतुष्पेटं, भूपायाऽऽशु न्यवेदयत् ॥१०३॥
रौद्रोऽन्तक इव क्रुद्धो, राजा सदसि मन्त्रिणः । पुत्रमाकारयामास, न स्वाः कस्यापि भूभुजः ॥१०४॥
चाणक्य-शकडाल-श्रीविमलाद्यपमानदाः । जायन्ते स्म न किं बिन्दु-नन्द-भीमादयो नृपा ॥१०५॥
सदसन्तस्तदा खेदानन्दावादाधेरे हृदि । सूनोः सन्धाकृतिं मेने, विपर्यासं पिताऽपि च ॥१०६॥

राजभवनात् चौर्यं विधाय संकेतं कृत्वा स्व-स्व स्थाने गमनम् ।

1 कपटचौरः ॥

झाञ्झणस्तूत्थितः प्रात र्बीजपूरकरान्नरान्। बद्ध्वाऽऽनयध्वमित्युक्त्वा, प्रैषीत्सास्त्रस्वपूरुषान् ॥१०७॥
ते माणिक्यचतुष्के तानभिज्ञायेभ्यताभृतः। निन्युः पश्चाद्भुजं बद्ध्वा, पुरो धीसखजन्मनः ॥१०८॥
कौतुकार्थमिलत्पौरपरीताः परिमोषिणः। निन्यिरे धन्यरक्षेण, नरेशाग्रे च तेन ते ॥१०९॥
चौराः पौरानमी रागद्वेषमोहा इवाङ्गिनः। मुष्णन्त्युष्णांशुजिष्णोऽथ, यज्जानासि कुरुष्व तत् ॥११०॥
इत्युक्ते तेन भूपालोऽपृच्छत्पेटाहृतिं न ते। कथंचिन्मेनिरेऽलीकवल्लीकन्दा हि तस्कराः ॥१११॥ उक्तं च—

"चौरेष्वङ्कुरिता समुत्सृतदला वैश्येषु वेश्याजने, सम्यक्पल्लविता गता जरठतां द्यूतप्रियेषु द्रुतम्।
वार्ताऽऽजीविषु पुष्पिताऽथ कथकालापेषु सच्छायतामेत्याऽसत्यलता समुद्गतफलाभोगा
नियोगिष्वभूत् ॥१०१॥"

मन्यध्वं किं न रे! सत्यमित्याख्यान्तं च झाञ्झणम्। उपलक्षितवांस्तुर्य, तस्करं तेषु शाब्दिकः ॥११२॥
ज्ञापिते चान्ययोस्तेन, पेटास्तै र्मानिता हृताः। तदा ताः क्ष्माभुजाऽऽनाय्य, क्व चतुर्थीत्यपृच्छ्यत ॥११३॥
तै र्व्याघ्रदुस्तटीन्यायापत्तिमूढैरजल्पिते। कोश एवास्ति सा देवेत्यमात्यापत्यमालपत् ॥११४॥
ततो वधार्थमादिष्टास्ते नव्यारक्षकं जगुः। तुर्यस्त्वमप्यभूस्तेनस्त्वच्छक्तिस्त्वनृताऽजनि ॥११५॥

राजसभायां चौराणामागमनम् तेषां वार्तालापश्च।

१ व्यवहारिवेपधरान्। २ चौराः। ३ धनिकरक्षकेण झाञ्झणेनेत्यर्थः। ४ दृढताम्। ५ मृपावली। ६ अधिकारिपु।
७ झाञ्झणः। ८ झाञ्झणमित्यर्थः॥

सत्यगीः स तदा नत्वा, राजानं तानयाचत । भूमितः पतितानां स्यादाधारो भूमिरेव हि ॥११६॥
राज्य-रूप-रमा-रामा-भोगाऽऽरोग्य-यशो-जयाः । जन्तुजीवितदानाद्धि, सर्वसिद्धिसुखर्द्धयः ॥११७॥
क्रुद्धोऽप्यन्यैर्निषिद्धोऽपि, तस्मै तानार्पिपन्नृपः । धीमन्तो नैव लङ्घन्ते, क्वापि कार्यक्षमं जनम् ॥११८॥
कार्यकृज्जातु जातागाः[1], प्रत्युत ह्यनुनीयते । पावकः मुष्टसर्वस्वोऽप्योकस्यानीयते पुनः ॥११९॥
मान्यस्वानुचरांश्चक्रे, तान्निवार्य स चौर्यतः । चन्दनं कुरुते ह्यङ्गं, तापं हृत्वा ससौरभम् ॥१२०॥
प्रतिज्ञां साहसं बुद्धिं, स्वामिभक्तिं कृपालुताम् । शशंसुस्तस्य च ज्ञातवृत्तान्ताः क्षितिपादयः ॥१२१॥

चौराणां श्रेष्ठ-पदे स्थापना ।

तं वस्त्राभरणादिभिस्त्रिरवनीपालोऽबुभूषन्निजं,
खड्गं काञ्चनकोशरत्नरचनारम्यं च तुष्टो ददौ ।
इत्थं कारितपञ्चपर्व-सकलद्यूताद्यभावादिभिः,
पुण्यं पूर्णमुरीचकार धरणेः पृथ्वीधरो मण्डनः ॥१२२॥



॥ इति युगोत्तमगुरुश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टालङ्कारक्रमेण श्रीरत्नशेखरसूरिविनेय-पण्डितनन्दिरत्नगणिचरणरेणु रत्नमण्डनविरचिते मण्डनाङ्के सुकृतसागरे पेथडकरिते पञ्चपर्वसप्तव्यसन वारणादि कथनो नाम षष्ठस्तरङ्गः ॥६॥

१ कृतापराधः ॥

॥ अथ पेथडतीर्थयात्रा-पुस्तकपूजादिकथनो नाम सप्तमस्तरङ्गः प्रारभ्यते ॥



अन्यदाऽनेकदानेद्धयशाः शत्रुञ्जये जिनम् । वन्दितुं स द्विपञ्चाशद्देवालययुतोऽचलत् ॥१॥ यतः—

"यात्रा सत्रागारं, सुकृततततेर्दुष्कृतापहृतिहेतुः। जनिधनवचनमनस्तनुकृतार्थता तीर्थकृत्त्वफला ॥१०२॥"

दिनैः कतिपयैः प्रापदपापः सिद्धपर्वतम् । नत्वा तत्रादिनेतारं, कृतस्वार्होचितक्रियः ॥२॥

घटीनां पञ्चविंशत्या, काञ्चनस्य च खोलकैः । चैत्यं स खचयाञ्चक्रे, चक्रेण श्लाघितः सताम् ॥३॥

किं पत्त्यावृतनीलसिंकूपरिकरः स्वर्णोरुमौलिर्नृपः, किं शिष्याढ्यसयोगपट्टदशमद्रास्सन्महा योगिराट् ।
हेमच्छन्नविहारसुन्दरशिराः पर्यन्तगिर्यन्तरासीनः पीनवनालिशालिकटकः शैलस्तदाऽतर्कि सः ॥४॥

रैवनोपत्यकां प्राप, ततोऽपि कतिभिर्दिनैः । सङ्घः प्रागागतो दैगम्बरोऽप्यस्ति तदैकतः ॥५॥

जातः प्रातःक्षणो यावत्तावदाहतनिस्वनः । लग्नो रैवतमारोढुं, समं सङ्घेन सोऽनघः ॥६॥

योगिनीपुरवास्तव्योऽगरवालकुलोद्भवः । अलावदीनशाखीनमान्यः पूर्णाभिधो धनी ॥७॥

१ मण्डितवान् । २ नीलवस्त्रम् । ३ तेजाः । ४ तलहट्टिकाम् ॥

महामात्य पेथडस्य गिरनार गिरौ ससङ्घेन गमनम् ।

तावद्दैगम्बरः सङ्घाग्रणीः सायुधसेवकः । आगत्याज्ञामदादन्धो, मदान्नेमिजिनेशितुः ॥८॥
यो यत्रैव स तत्रैव, प्रधानादिः स्थितस्तदा । दुर्लङ्घाज्ञा हि सङ्घश्रीदेवगुर्ववनीभुजाम् ॥९॥
पृष्टे पृथ्वीधरेणोचेऽन्येनादस्तीर्थमस्ति नः । तेन प्रागधिरोक्ष्यामः, किञ्च पूर्वागता वयम् ॥१०॥
ब्रूमस्तीर्थमिदं नोऽस्ति, ब्रूथ यूयं तु नः परम् । हेतुरत्रोच्यतां कोऽपीत्युक्तेऽमात्येन सोऽवदत् ॥११॥

रैवतगिरौ श्वेताम्बर-दिगम्बरयोः विवादः ।

प्रकटीक्रियते कटीगुणोऽञ्चलिका वा यदि नेमिनेतरि ।
भवतान्तिहरं कथं तदा; भवतां तीर्थमिदं न कथ्यते ॥१२॥
न च संसहते जिनस्तनौ निहितान्याभरणानि भाविभिः ।
तदिदं बत कौकुबम्बरं; न तु सैताम्बरमस्त्यसंशयम् ॥१३॥
न्यगदज्जगदद्भुतक्रियः सचिवः किं न जरत्पुरादिषु ।
प्रतिमाः सकटीगुणाऽच्युताञ्चलिकाः किन्तु न ता भवन्ति वः ॥१४॥
शृणु यच्च विभूषणोच्चयं न जिनः संसहतेऽत्र कारणम् ।
गुरुहग्मितयोजनव्रजन्महसस्तेन विधीयतेऽस्य किम् ॥१५॥
सहकारतरौ न तोरणं न च लङ्कालहरीयमर्हति । इति मूर्तिमधिष्ठितः सुरः फलवर्द्धामिव भूषणोज्झकः ॥१६॥
यदि वेत्थमिदं हि वस्तदा न किमाराद्धपिनाकिनाकिनाम् ।
परितो गिरिवारिधारको गिरिराडेष मृडोरुलिङ्गति ॥१७॥ (वैतालीय वृत्तषट्कम्)

इत्यादियुक्तिभिः सङ्घपत्योर्विवदमानयोः । वृद्धा द्वेधाऽपि चातुर्यवन्तोऽवोचुर्विचारिणः ॥१८॥ यतः-

दिष्ट्या स्वागतमद्यवार्द्धक ! चिरात्पूर्णायुषा दृश्यसे, त्वत्संगेन कचा न केवलममी स्यु र्वृद्धयोऽप्युज्ज्वलाः ।

वैराग्यं सुलभं दुरापमपि हि स्यान्मान्यता साधुषु,

श्रेयःकर्मणि जृम्भते मतिरिति ब्रूमो गुणांस्ते कति ? ॥१०३॥

हित्वा वादं सहारुह्य, शक्रमालाऽर्पणक्षणे । यो विधाताऽधिकं वित्तं, तस्य मायामदं यतः ॥१९॥

क्षत्राः शस्त्रैर्बुधाः शास्त्रैरिभ्याः स्वैः पामराः करैः । गालीभिरङ्गनाः शृङ्गैः, पशवः कलिकारिणः ॥२०॥

प्रपद्येदं च वृद्धोक्तमुभौ तीर्थग्रहोद्यतौ । सहाऽऽरुरुहतुः सङ्घसहितै रैवताचलम् ॥२१॥

लोकाः सर्वे सरोमाञ्चाः, नेमुः श्रीनेमिने मुदा । स्नात्रपूजा-ध्वजारोप-नृत्यस्तुत्यादि च व्यधुः ॥२२॥

इन्द्रमालोद्घट्टनायां, सङ्घलोके सकौतुके । स्थितौ सङ्घेशसचिवौ, नेमेर्वामेतराङ्ग्योः ॥२३॥

स्थितिरेव तयोरादौ, व्यनक्ति स्म जयाजयौ । यस्याभूद्दक्षिणा बाहा, श्रीनेमेस्तस्य वै जयः ॥२४॥

तौ टङ्कान् हाटकान् हेमसत्कसेरघटीरपि । क्रमेण चक्रतुस्तीर्थग्रहव्यग्रहृदौ तदा ॥२५॥

रैघटीः सचिवस्तत्र, पञ्चेन्द्रस्त्वक्कृते कृताः । षडन्योऽपि ततः सप्ताष्टाद्यास्तौ चक्रतुः क्रमात् ॥२६॥

चक्रे च षोडशाद्यस्ताः, सद्यस्तत्र क्षणेऽपरः । मार्गयित्वा दिनान्यष्टौ, स्वर्ण मेलयितुं ययौ ॥२७॥

मन्त्र्यपि प्राहिणोद्दुर्गे, घटीयोजनगामिनीम् । करभीं स्वर्णमानेतुमुक्त्वा दशदिनावधिम् ॥२८॥

पूर्ण-पेथड-योर्मध्ये कस्यतीर्थ इति विवादे अधिक स्वर्ण व्ययरूपः पणः ।

पूर्णः कटकटङ्कावल्यादिभिर्जनतार्पितैः । सङ्घेऽष्टाविंशतिं चामीकरस्यामीमिलद्धटीः ॥२९॥
प्रस्तुते पुनरप्यैन्द्रस्रग्वादे तावतीरपि । सोऽवादीत्तावदाद्येन, षट्पञ्चाशत्तदोचिरे ॥३०॥
सहस्रयोजनैर्लक्षानुष्टुभिः कोटिरूपकैः । पश्चाद्यः स इवाद्यस्य, ततो नामिलदप्यसौ ॥३१॥
सङ्घं पप्रच्छ चैकान्ते, भवद्भिर्भाव्यतोऽधिकम् । तेनोचे नास्ति नः[1] शक्तिश्चेत्तव स्यात्तदा कुरु ॥३२॥
वृषभानोर्मनुष्याणां, स्वेषां[2] विक्रयणेऽपि न । एतावदपि हि स्वर्णमधिकस्य तु का कथा ? ॥३३॥
लुण्ठितैरिव भूत्वा च, फलं किं तीर्थवालने । इमं न हि सहादाय, शैलेशं यास्यते गृहे ॥३४॥
तदाकर्ण्य स्वसङ्घोक्तं, सङ्घेशः सचिवं ततः । परिधत्त स्रजं यूयमित्याख्यदसिताननः ॥३५॥
दिवाऽब्जौघ इवोल्लासं, तदानीं दक्षिणो जनः । नक्तं स[3] इव च व्यक्तं, वामः सङ्कोचमासदत् ॥३६॥
हैमीभिर्दिग्वधूटीकनकमयघटीतुल्यतेजोवितानः, षट्पञ्चाशद्धटीभिस्तदनु परिदधौ दाम पौरन्दरं सः ।
संसारत्राथि चारात्रिकमधिकमहं दन्ध्वनत्तूर्यवर्य, कृत्वा दत्त्वा च दानं निजपदमगमल्लोकलक्षाभ्युपेतः ॥३७॥
इत्थं पृथ्वीधरस्तीर्थं, स्वं कृत्वाऽवातरत्ततः । शक्तौ सत्यां परोपात्ततीर्थोपेक्षा हि नोचिता ॥३८॥
दृष्टान्तः सिद्धसेनोऽत्र, स्तुत्यालिङ्गविदारणः । बप्पभट्टिश्च बालास्याम्बुजेनाऽम्बाभिधायकः ॥३९॥

पेथडविहित-षट्पञ्चाशद्धटी स्वर्णदानेन तीर्थस्य स्वायत्तीकरणम् ।

---

१ अस्माकम् । २ आत्मीयानाम् । ३ कमलौघ इव ॥

प्रतिज्ञात स्वर्णस्य तत्काल एवार्पणे विचारः-

द्रव्यं देवस्य दत्त्वैव, भोक्ष्येऽहमिति मन्त्रिणः। अभिग्रहवतश्चैकमौपवस्त्रमजायत ॥४०॥
धर्मारम्भगदच्छेदविभवागमनेष्विव। देवद्रव्यार्पणे हि स्याद्विलम्बो न शुभावहः ॥४१॥ उक्तं च—

❀"आयाणं जो भंजइ, पडिवन्नधणं न देइ देवस्स।
नस्संतं समुविक्खइ, सोवि हु परिभमइ संसारे ॥१०४॥
विक्किज्जइ तणयाई, किज्जइ दासत्तणं परगिहे वा।
एवंपि हु अप्पिज्जा, जिणदव्वं अप्पहिअहेउं ॥१०५॥
चेइयदव्वविणासे, इसिघाए पवयणस्स उड्डाहे।
संजयचउत्थभंगे, मूलग्गी बोहिलाभस्स ॥१०६॥
चेइयदव्वं साहारणं च जो दुहइ मोहिअमईओ।
धम्मं सो न विआणइ, अहवा बद्धाउओ नरए ॥१०७॥"

---

१ उपवासः। २ नाशयतीत्यर्थ.।

आयतनं यो भनक्ति प्रतिपन्नधनं न ददाति देवस्य। नाशयन्तं समुपेक्षेत सोपि खलु परिभ्रमति ससारे ॥
विक्रीणीयात्तनयादीन् कुर्याद् दासत्वं परगृहे वा। एवमपि खलु अर्पय जिनद्रव्यं आत्महितहेतोः ॥
चैत्यद्रव्यविनाशे ऋपिघाते प्रवचनस्य उड्डाहे। संयतचतुर्थभङ्गे मूलेऽग्नि बोधिलाभस्य ॥
चैत्यद्रव्यं साधारणञ्च यो द्रुह्यति मोहितमतिकः। धर्मः सो न विजानाति अथवा बद्धायुष्को नरके ॥

द्वितीयेऽह्नि च निर्बन्धेऽप्यभुक्त स न सङ्घपः। महाधराधा भूयांसस्तदास्थुरकृताशनाः ॥४२॥
उन्नतस्येव मेघस्य, मार्गं स्वर्णस्य पश्यताम्। तेषां चानश्नतां तद्द्विघटीशेषमभूदहः ॥४३॥
ऐतावत्याऽऽययुः स्वर्ण-करभ्योऽथ क्षणादभूत्। प्रमोदमन्दरक्षुब्धोऽस्ताघः सङ्घाब्धिरुद्ध्वनिः ॥४४॥
तत्कालं तोलयित्वा स, ददौ देवस्य काञ्चनम्। चक्रे चतुर्विधाऽऽहारक्षपणं च क्रियापरः ॥४५॥ यतः—
"अह्नो मुखेऽवसाने च, यो द्वे द्वे घटिके त्यजन्। निशाभोजनदोषज्ञोऽश्नात्यसौ पुण्यभाजनम् ॥१०८॥"
प्रातः कृतोपवासानां भुक्तिभक्तिपुरस्सरम्। षष्ठपारणकृत्सङ्घवात्सल्यं स व्यधान्महत् ॥४६॥
हित्वा[2] हेमघटीः सर्वाः, लक्षा एकादशापराः। व्ययित्वा रूपटङ्कानां, सोऽथायासीन्निजालयम् ॥४७॥

षट्पञ्चाशद्घटी स्वर्णं तोलयित्वाऽर्पणम्, एकादश लक्षरूपटङ्कव्ययं च कृत्वा स्वगृहगमनम्।

॥ इति पेथडतीर्थद्वययात्राप्रबन्धः ॥



अन्यदा प्रातरुत्थाय, कृतप्राभातिकक्रियः। इभ्यार्हभूषणो नेत्रपथ्य[3]नेपथ्यडम्बरः ॥४८॥
रङ्गत्तुरङ्गमारूढः, सश्रीकश्रीकरीशिराः। अगाद्देवगुरून्नन्तुं, प्रधानः सपरिच्छदः ॥४९॥ उक्तं च—

१ शेषघटीद्वये दिने सति। २ अर्पयित्वा। ३ नेत्रप्रियवेशः॥

॥ अथ पेथड पुस्तक पूजा प्रबन्धः ॥



"प्रातः प्रोत्थाय वीक्ष्यो जिनमुखमुकुरः सद्गुरोः पन्नखत्विट्
कङ्क्त्या मार्ज्यमाज्ञासुमणिपरिचितं चोत्तमाङ्गं विधेयम् ।
सत्योक्त्या वक्त्रपूतिर्गुरुमधुरगिरा [2]गन्धधूल्या सुगन्धी,
कर्णौ गात्रं परीतं गुणिनतिवसनै र्बोधनी चाग्र्यपाठैः ॥१०९॥"

गुरुपार्श्वे वन्दनार्थं गमनमागमशब्दश्रवणञ्च ।

देवान्नत्वा गुरून्नन्तुं, धर्मशालान्तिकं गतः । श्रुतपाठरवाद्वैतं, [3]श्रुतपूर्वीत्यशङ्कितः ॥५०॥
श्रतपाथोधिमन्थेन, गुरुपर्जन्यगर्जिना । किं वा कल्मषकुल्माषपेषेणोद्घोषवत्यसौ ॥५१॥
प्राप्तोऽथ धर्मशालायां, नत्वा क्लृप्तोचितासनः । दृष्ट्वाऽपृच्छद् गुरूनेकं, वाचनाग्राहिणं गणिम् ॥५२॥
नैकशो गौतमाख्याङ्कं, किमेतद्वाचयन्त्यमी । गुरवो जगुरार्येष, पञ्चमाङ्गोत्तमागमः ॥५३॥
पृष्टं यद्गौतमेनान्योपकारायेह जानता । तन्नामादाय चादिष्टं, वीरेण श्रीमुखेन तत् ॥५४॥
नाम श्रीगौतमस्यात्र, तत्षट्त्रिंशतसहस्रशः । तावतीनामतुच्छानां, पृच्छानामत्र निर्मितेः ॥५५॥ उक्तं च—

१ दर्पणः । २ कस्तूरिकया । ३ श्रुतं पूर्वमनेनासौ श्रुतपूर्वी प्रथमं श्रुतवानित्यर्थः ।

श्रीभगवतीसूत्र श्रवणं सप्त-भाण्डागार स्थापनञ्च ।

"या षट्त्रिंशत्सहस्रान् प्रतिविधिसजुषां बिभ्रती प्रश्नवाचां,
चत्वारिंशच्छतेषु प्रथयति परितः श्रेणिमुद्देशकानाम् ।
रङ्गद्भङ्गोत्तरङ्गा नयगमगहना दुर्विगाहा विवाह-
प्रज्ञप्तिः पञ्चमाङ्गं जयति भगवती सा विचित्रार्थकोशः ॥११०॥"

ताहक्प्रज्ञाबलोन्मुक्तः, शक्तोऽध्येतुं न यो गणिः । विधिना व्यूढयोगः सोऽङ्गानां गृह्णाति वाचनाम् ॥५६॥
यत्तपोऽध्यापनाऽधीति-श्रुति-वाचन-लेखनैः । अङ्गाद्यागमभक्तो यः, स वै सार्वज्ञ्यमश्नुते ॥५७॥
प्रधानः स्माह मच्चित्तमयूरः प्रीतिमत्तरः । श्रीवीरवचनश्रुत्या, कादम्बिन्येव नृत्यति ॥५८॥
तस्मादादिश्यतामेषां, वाचयन्त्यादितो यथा । भदन्ताङ्गमिदं तावदाचिकर्णयिषाम्यहम् ॥५९॥
आदितोऽङ्गं ततो गुर्वादिष्टैकयतिवाचितम् । शुश्राव मुञ्चन्निष्कं स, प्रति गौतमनामकम् ॥६०॥
व्यक्तवर्णावलीसीरमार्गस्तोमे तदाऽद्भुतम् । क्षेत्रे तृतीयके निष्कवृष्टिं मन्त्रिघनोऽतनोत् ॥६१॥
षट्त्रिंशता सहस्रैः स, निष्काणां दिनपञ्चके । रचयित्वा चितोऽर्चां सच्चित्तं चमदचीकरत् ॥६२॥
धनेनानिधनेनाढ्यो, भृगुकच्छादिपूर्षु च । प्रौढानि सप्तभारत्या, भाण्डागाराण्यबीभरत् ॥६३॥

---

१ उत्तरसहितानाम् । २ श्रोतुमिच्छामि । ३ हलः । ४ निर्जलां वृष्टिमितिविरोधः, सुवर्णमुद्रावृष्टिमिति परिहारः । ५ ज्ञानस्य । ६ चमत्कारमकार्षीत् । ७ अक्षयेन ।

पट्टसूत्र-गुणक्षौम-वेष्टनस्वर्णचातिकाः । निर्माप्य पुस्तकेषु स्वं, कृतार्थ्यकृत धीसखः ॥६४॥

॥ इति पेथडपुस्तकपूजाप्रबन्धः ॥



॥ अथ पेथड देवपूजा प्रबन्धः ॥



सप्तमः तरङ्गः ।

जिनगृहे प्रभोः पूजां अद्भुताङ्गिका विरचनञ्च ।

गुरूपान्ते त्रिकालार्हदर्चा नियममाश्रितम् । अपि व्यापारवैयग्र्येऽपालयत्स कृपालयः ॥६५॥
संपदो हि जिनादेव, तास्तु ये लब्धपूर्विणः । न पुनस्तं निषेवन्ते, ध्रुवं ते स्वाधिपद्रुहः ॥६६॥
मध्यंदिने दिनेशश्रीरन्यदा श्रीजिनेशितुः । पूजां कर्मच्छिदादीप्र-चक्रमेवं प्रचक्रमे ॥६७॥
कृत्वाऽस्य कमले कोशं, कौशेयसिचयद्वयः । स्नपनादिविधिपूर्वं, सालङ्कारकरोऽकरोत् ॥६८॥
पृष्टिप्रतिष्ठितस्नातपूतवस्त्रजनार्पितैः । पुष्पैस्ततोऽङ्गिकामङ्गे, कर्तुमारभताद्भुताम् ॥६९॥
अस्मिन्नवसरेऽवन्तिसीम्नि सैन्यमवस्थितम् । श्रुत्वा सारङ्गदेवस्य, राजा सन्धिं विधित्सति ॥७०॥ यतः—
"संधानं विग्रहो यानमासनं द्वैधमाश्रयः । भूमीन्दोः षडमी राज्यकदलीखण्डयामिकाः ॥१११॥"

---

१ कृतार्थमकरोत् । २ सिद्धान्तानुसारेण । ३ कर्तुमिच्छति ।

परमार्हत्-मन्त्रिराज-सत्कजिन-गृहस्य रमणीय वर्णनम् ।

सान्धिविग्रहिकं शीघ्रं, तेनातः प्रजिघीषुणा । पृष्टो ज्योतिर्विदाचख्यौ, मुहूर्तं विजयाह्वयम् ॥७१॥ यतः—
"द्वौ यामौ घटिकाहीनौ, द्वौ यामौ घटिकाधिकौ । विजयो नाम योगोऽयं, सर्वकार्यप्रसाधकः ॥११२॥"
चिचालयिषुणा तत्र, मुहूर्ते तं महीभुजा । आकार्यते स्म मन्त्रादिहेतोः पृथ्वीधरस्तदा ॥७२॥
तमाकारयितुं गेहागतः पश्चादगात्पुनः । प्रथमिण्युक्तमन्त्रीशदेवपूजाक्षणो जनः ॥७३॥
राज्ञाऽन्यः प्रहितः सोऽपि, द्वारि स्थित्वा नृपोदितम् । कर्तव्यं धीसखस्याख्यापयति स्म भुजिष्यया[1] ॥७४॥
प्रथमिण्या तदाकर्ण्याऽवादि सोऽमृतकीर्गिरा । द्वे घट्यौ भ्रातरद्यापि, देवाऽर्चायां लगिष्यतः ॥७५॥
ततो गत्वा नृपस्याख्यत्, सोऽपि तद्दयितोदितम् । आज्ञाभङ्गेऽपि भूपस्तु, प्रधानाय चुकोप न ॥७६॥
मूहूर्तासत्ति[2]सौत्सुक्यो, राजाऽथ स्वयमाययौ । परिबर्हं[3] बहिर्मुक्त्वा, जगामैको गृहोदरे ॥७७॥
ज्ञाप्या मे नागतिः केनाप्यमात्यस्येत्युदीर्य सः । पुरोगैकजनादिश्यमानमार्गोऽग्रतोऽगमत् ॥७८॥
नित्यजात्यदशाङ्गादिधूपोत्क्षेपसुगन्धिनि । नीरशङ्कार्पकानीलकाचकुट्टिमशालिनि ॥७९॥
विचित्रार्हच्चरित्रादिचित्रशोभितभित्तिनि । चारुचन्द्रोदयामुक्तमुक्तास्तबकपङ्क्तिनि ॥८०॥
भवने भावनेन्द्रे[4] तु, विमाने वा तु वैबुधे[5] । केलिहर्म्ये तु कैवल्यश्रियो देवालयोदरे ॥८१॥
महानीलमयं लिङ्गस्फोटाविर्भूतमद्भुतम् । निविष्टं विष्टरे स्फारफणारत्नांशुभासुरम् ॥८२॥

---

१ दास्या । २ समीप । ३ परिवारम् । ४ भवनपतिसंबन्धिनि । ५ देवसंबन्धिनि ।

सालङ्कारकनीयुग्मचालितोद्दामचामरम् । श्रीपार्श्वं पूजयन्तं क्ष्मापतिरैक्षिष्ट धीसखम् ॥८३॥ षड्भिः कुलकम् ॥

पुष्पमाणवमुत्थाप्य, छन्नमध्यास्य तत्पदम्[1] ।
लग्नः पुष्पाणि दातुं सः, क्रमाऽविज्ञो यथा तथा ॥८४॥

जिनेशभवने पूजायां पेथडस्य दत्ताव-धानता ।

मुहुः क्रमसुमाप्राप्तेः, स्वयमादित्सया[2] मुखम् । प्रत्यग् चक्रे यदा मन्त्री, तदाऽपश्यद्धरापतिम् ॥८५॥
अभ्युत्तिष्ठन्तमुर्वीशः, उपवेश्य प्रसह्य[3] तम् । देवभक्त्या हृष्टतुष्टहृदभाषिष्ट शिष्टधीः ॥८६॥
धन्योऽसि श्लाघ्यते जन्म जीवितव्यं धनं च ते । देवस्योपर्यपर्यन्तो, यस्येदृग्भक्तिविस्तरः ॥८७॥
चेतनाङ्गे घृतं भोज्ये, श्रीकारो नृपशासने । सन्धाने लिम्बुकरसः, सारं धर्मे च वासना ॥८८॥
मनोवाक्कायवस्त्रेषु, भूपूजोपकृतिस्थितौ । विधाय सप्तधा शुद्धिं, त्वां विना कोऽर्चकः परः ? ॥८९॥
शतेऽपि सति कार्याणां, देवपूजाक्षणे त्वया । आकारितेनापि मया, नागन्तव्यं कदाचन ॥९०॥
कुर्वेकाग्रमनाः पूजां, प्रतोल्यामस्मि तावता । इत्युक्त्वोत्थाय चासीनस्तत्र दत्तोचितासनः ॥९१॥
पूजास्तुतितनूत्सर्गादिकं[4] पर्याप्य[5] धीसखः । आगत्याथ नृपं नत्वोपाविक्षदुचितास्पदे ॥९२॥
तावदुक्तमुहूर्तस्यातिक्रमोऽभूत्तथाऽपि न । कुप्यति स्म नृपस्तस्मै, पुण्यस्याहो ! विजृम्भितम् ॥९३॥
उक्तं च—

---

१ तस्य पदं तत्स्थानमित्यर्थः । २ ग्रहणेच्छया । ३ बलात् । ४ कायोत्सर्गः । ५ सपूर्णीकृत्य ।

"पत्नी प्रेमवती सुतः सुविनयो भ्राता गुणालङ्कृतः,
स्निग्धो बन्धुजनः सखाऽतिचतुरो नित्यं प्रसन्नः प्रभुः ।
निर्लोभोऽनुचरः स्वबन्धुसुकृतप्रायोपभोग्यं धनं,
पुण्यानामुदयेन सन्ततमिदं कस्यापि संपद्यते ॥११३॥"

मन्त्रयित्वा तदोभाभ्यां, सान्धिविग्रहिकः सुधीः । प्रैषि नव्ये मुहूर्ते चाऽचालि संधाय तद्दलम् ॥९४॥

॥ इति पेथडदेवपूजाप्रबन्धः ॥



॥ अथ पेथड प्रतिक्रमण प्रबन्धः ॥

गुरुनिश्रायामेव प्रतिक्रमणकर्तुमाग्रहः ।

द्विगव्यूत्यामहःसत्कं, पाक्षिकं योजनान्तरे । स प्रतिक्रमणं चक्रे, गुरूणामेव संनिधौ ॥९५॥
गेहे [1]तच्चिन्तनादक्षप्रत्युपेक्षाद्यनिश्चयात् । रागद्वेषोदयाच्चोपसाधु ह्यावश्यकं वरम् ॥९६॥
न सामायिकमेवादौ, रक्तद्विष्टे च मानसे । शक्यते न्यसितुं कुड्ये, इवालेख्यमसंस्कृते ॥९७॥

---

१ गृहादिचिन्तातः ।

साम्यरम्ये त्वसन्तोऽपि, तदाद्याः साधुसद्गुणाः । स्वान्ते हि प्रतिबिम्ब्यन्ते, शुद्धकुड्यनिदर्शनात् ॥९८॥

तथाहि—क्वापि राजाऽर्पयच्चित्रकृतां चित्रयितुं सभाम् । तत्रैको जगृहे भागोऽनेकैरेकेन चापरः ॥९९॥

यश्च तश्चित्रितो भागो, जवन्यपगमे स तु । घृष्टमृष्टोज्ज्वले भागेऽन्यस्य प्रत्यफलत्तराम् ॥१००॥

तया बुद्धया नृपात्त्वापद्यथा स बहुलं धनम् । गुणानां प्रतिबिम्बेऽपि, तथाऽऽप्येतोत्तमं पदम् ॥१०१॥

स्वान्तः-शुद्धयां चित्रकारयोः निदर्शनम् ।

वर्षान्तर्नियमेन त्रिःपृच्छया गुरुसन्निधौ । नमस्कारादिसूत्राणां सुव्यक्तं सोऽर्थवित्तमः ॥१०२॥

सूत्रवर्णपदार्थादिचिन्तनैकाग्रमानसः । मौनमेव प्रतिक्रान्तिं, कुर्वाणः स्म करोति च ॥१०३॥ यतः—

❀"पडिलेह-वारवेला-विआरभूमी-पडिक्कमणकाले । मग्गे गच्छन्तेणं, मुणिणा मोणं विहेअव्वं ॥११४॥"

॥ इति पेथडप्रतिक्रमणप्रबन्धः ॥

लोकलक्षपरीनेनाप्युत्तीर्य तुरगात्पुनः दृष्ट्वा । साधर्मिकं नव्यं, तेन तेनेतरां नतिः ॥१०४॥ यतः—

×"साहंमिअंमि पत्ते, घरंगणे जस्स होइ नहु नेहो । जिणसासणभणिअमिणं, सम्मत्ते तस्स संदेहो ॥११५॥"

---

१ परिवृतनापि ।

छाया- ❀ प्रतिलेखनोच्चारवेला विहारभूमि-प्रतिक्रमणकाले । मार्गे गच्छता मुनिना मौनं विधातव्यम ॥

× साधर्मिके प्राप्ते गृहाङ्गणे यस्य भवति न खलु स्नेहः । जिनशासनभणितमिदं सम्यक्त्वे तस्य संदेहः ॥

ऐश्वर्यं विनयान्वितं यदि तदा गङ्गाम्बुना दक्षिणा-
वर्तः [1]कम्बुरपूरि मञ्जरितवानुर्वी[2]रुहः स्वर्गिणाम् ।
जातः शीत[3]करः कलङ्करहितः सौभाग्यवत्याः शिर-
स्याबद्धं मुकुटं स्फुरत्सुरभितालब्धा[4]र्चनं काञ्चनम् ॥१०५॥

प्रभूतसुकृत-सेवनानन्तरं मन्त्रीश्वर पेथडस्य स्वर्गगमनम् ।

इत्याद्युत्कटपुण्यकोटिघटनाकर्णाटनात्तुष्यता
सौवार्धासनि संनिवेशनकृते [5]पाकारिणाऽऽकारितः ।
काले धीसखशेखरोऽथ कियति [6]द्यां [7]भर्मसंवर्मित-
ज्योतिर्मण्डनमण्डपीमिषमरुद्यानाधिरूढो ययौ ॥१०६॥

॥ इति युगोत्तमगुरुश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टालङ्कारक्रमेण श्रीरत्नशेखरसूरिविनेय-
पण्डितनन्दिरत्नगणिचरणरेणुरत्नमण्डनविरचिते मण्डनाङ्के सुकृतसागरे
पेथडतीर्थयात्रापुस्तकपूजादिकथनो नाम सप्तमस्तरङ्गः ॥७॥



१ शङ्खः । २ वृक्षः । ३ चन्द्रः । ४ पूजनम् । ५ इन्द्रेण । ६ देवलोकम् । ७ स्वर्णम् ।

॥ श्रीपेथडसुत-श्रीझाञ्झणप्रबन्धकथनो नाम अष्टमस्तरङ्गः प्रारभ्यते ॥

झाञ्झणकारित करहेटक प्रासाद प्रबन्धः ।



तीर्थ यात्रीपदेशः ।

झाञ्झणस्तदनु ध्वस्तदनुजाचार्यवर्यधीः । व्यापारमकरोत्कीर्तिस्फूर्त्या हिमकरोज्ज्वलः ॥१॥ यत.—

आरम्भाणां निवृत्तिर्द्रविणसफलता सङ्घवात्सल्यमुच्चै-
नैर्मल्यं दर्शनस्य प्रणयिजनहितंजीर्णचैत्यादिकृत्यम् ।
तीर्थोन्नत्यं जिनेन्द्रोदितवचनकृनिस्तीर्थकृत्कर्मबन्धः,
सिद्धेरासन्नभावः सुरनरपदवी तीर्थयात्राफलानि ॥११८॥

प्राग् मेरुर्भूस्ततोऽब्दोऽब्धिरगास्तिः खं ग्रहा जिनः । प्रौढा एकैकतः सर्वप्रौढः सङ्घस्तदर्चितः ॥३॥
तैस्याप्यधिपतीभावः, पदानामुत्तमं पदम् । पुण्यैरवाप्यतेऽगण्यैर्मातृगुर्वाशिषां फलम् ॥४॥

---

१ शुक्र । २ सङ्घस्य ॥

गिरिराज तीर्थसङ्घस्य महद्-वर्णनम् ।

इत्यादिगुरुगीरुद्यद्भावो देशेषु भूरिषु । सङ्घमाकारयामास, प्रेष्य कुङ्कुमपत्रिकाः ॥५॥
अर्वच्छकटपृष्ठ्यादिसामग्रीं कृतपूर्विणि । द्व्यर्धलक्षे मनुष्याणां, यात्रार्थं मिलिते सति ॥६॥
वर्षे खवेददेवेन्दुमिते (१३४०) माघस्य पञ्चमी । या सिताऽऽसीत्तत्र मन्त्री, निमित्तैः प्रास्थितोत्तमैः ॥७॥
निस्वानस्वरनादिकादिनिनदैर्भट्टावलीषट्पदच्छन्दोभिर्वनितावितानधवलैर्गन्धर्वगीनारवैः ।
प्रस्थाने हयहेषितैर्वृषघटाकण्ठध्वनद्घण्टिकाघोषैः स्यन्दनचीत्कृतैश्च रचितं ब्रह्माण्डमेकध्वनि ॥८॥
रङ्गत्तुरङ्गध्वजा रेजुश्चारुचामरचालनाः । तत्र द्वादशसौवर्णतोरणा अर्हदाऽऽलयाः ॥९॥
प्रत्यर्हद्गृहमेकैकं, नित्यनृत्यपरायणम् । पेटकं नर्तकीसत्कं, समृदङ्गाद्युपस्करम् ॥१०॥
द्वादशानःसहस्राणि, छन्नान्यजिनचीवरैः । तेषु द्वादशसङ्घेशाः, वसुवर्षणवारिदाः ॥११॥
कल्पितानेकशृङ्गारकण्ठशृङ्गा रयोद्धुराः । पञ्चाशच्च सहस्राणि, पृष्ठ्याः पुष्टवपुष्टमाः ॥१२॥
अस्तोकपरिवाराः श्रीधर्मघोषगुरूत्तमाः । पटपौषधशालाकाः, सूरयोऽन्येऽपि विंशतिः ॥१३॥
सुखासनानि वाहिन्यः, श्रीकर्यो जलपल्वलाः । सूपकाराः सूत्रधारा, इत्याद्यखिलमप्यभूत् ॥१४॥
वस्त्रौकःप्रखरास्त्रादिभारोत्पाटनहेतवे । मिलित्वा वेसरोष्ट्राणां, शतानि द्वादशाभवन् ॥१५॥
मोहराजजये सैन्यं, सार्थः सिद्धिपुरीं प्रति । जन्या मन्त्रिवरोदारपुण्यलक्ष्मीकरग्रहे ॥१६॥

१ अश्वरथः । २ शकटः । ३ चर्ममयवस्त्रैः । ४ वेगोद्भटा ।

सङ्घः प्रयाणविश्रामैः, सञ्चाराऽथ सौख्यदैः। प्रभूतभोज्यशाकाज्यगोरसाम्भस्तृणेन्धनैः ॥१७॥
सिङ्घनं नाम सङ्घस्य, रक्षायै सह मन्त्रिणा। सेल्लहस्तं निजं राजा, प्रैषीत्परुषपौरुषम् ॥१८॥
सहस्रे द्वे तदश्वानां, शेषाणां चेकसुत्कटम्। पटमण्डपदुर्गस्य, परितो निशि बभ्रमुः ॥१९॥
भुक्तेष्वभुक्तसर्वेषु, सुप्तेषु स्वपिति स्म च। जजागार पुनः पूर्वं, सर्वेभ्यस्तत्र मन्त्रिराट् ॥२०॥
संनद्धः सिङ्घनः पृष्ठे, तुरङ्गैकसहस्रयुक्। पञ्च पञ्च शतान्यश्वाः, पार्श्वयोः कृतरक्षणाः ॥२१॥
कणत्किङ्किणिकाकीर्णप्रखरोपेतवाजिनि। आरूढः प्रौढतामुच्चैःश्रवःस्थपुपते र्दधत् ॥२२॥
संनद्धः सायुधः सैकसहस्रतुरगो वली। पत्तिपूरः पुरो मन्त्री, वाद्योरुध्वनिरध्वनि ॥२३॥
इत्यादिरीतिसञ्चारिसङ्घोद्धूतेन पांशुना। सुनासीरादयोऽप्यापुः, स्नानं पापापहं सुराः ॥२४॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥
आगाद्धालपुरे सङ्घस्तत्र मन्त्री शमातुलः। साधुर्नरपतिः प्रौढं, प्रवेशमहमातनोत् ॥२५॥
प्रतिष्ठाप्य चतुर्विंशत्यर्हद्बिम्बानि तत्र सः। भूसुभ्रूलोचनाकारं, चित्रकूटमुपागमत् ॥२६॥
सङ्घस्तत्र व्यधाच्चैत्यपरिपाट्यादिविस्तरम्। चित्राणि च विचित्राणि, कौतुकेन व्यलोकत ॥२७॥
सङ्घः प्रापत्ततः पापोत्करहे करहेटके। उपसर्गहरः पार्श्वस्तत्र नेमे च सेचकैः ॥२८॥

अखण्डभाव भक्त्या श्रीसङ्घवात्सल्यम्।

---

१ कठोरपराक्रमम्। २ इन्द्रस्य। ३ इन्द्रादयः। ४ पापसामूहहन्तरि। ५ श्यामः।

तत्रामात्रमहोत्सवैरवसरे यस्मिन्नमात्येश्वरश्चक्रे सङ्घशतक्रतुः स चतुरैराशङ्कि तस्मिन्निति ।
भोः ! किं [1]भालविशालधन्वसरलभ्रूयामलज्यामिल-
च्चारूच्चैस्तिलकेषुरेष सुभटो हन्ता कलिद्विषिणाम् ॥२९॥

करहेटक नवीनचैत्य निर्मापणम् ।

मन्त्रिणस्तिलके जाते, गुरवः प्रोचुरार्य ! हे । प्रति प्रयाणं सङ्घेशः, कारयेच्चैत्यमुच्छ्रितम् ॥३०॥
तदशक्तौ तु यत्रासीत्तिलकं तत्र सङ्घराट् । अवश्यं कारयेज्जैनं, गेहं देहं शिवश्रियः ॥३१॥
श्रुत्वेति त्वरयाऽऽरेभे, चैत्यं कारयितुं तदा । एकत्र तत्र सङ्घेन्द्रः, परं पतति तन्निशि ॥३२॥
द्वित्रस्थानेष्विति क्षेत्रपतिस्तत्रत्य उद्धतः । नव्यं विहारं संसेहे, कार्यमाणं न मन्त्रिणा ॥३३॥
पुरा तत्राऽस्ति वामेयचैत्यं लघ्विति तन्नवम् । कर्तुमारम्भयास, पातयत्येतदप्यसौ ॥३४॥
मन्त्रिणा क्रियमाणेऽथ, प्राणे सङ्घजनेषु सः । लग्नः कोपादुपद्रोतुं, शिरोर्निज्वरमारणैः ॥३५॥
सङ्घमुख्यैस्तदाख्यायि, मुधा मा क्रियतां बलम् ।
मनुजा निर्जरं जातूर्जस्वित्वेन न जेज्यति ॥३६॥
द्रौपदीप्शितपद्मार्थ, तडागाऽगाधमध्यगाः । नाकिना बलिना किं न, बद्धाः पञ्चापि पाण्डवाः ॥३७॥
बाढं सङ्घे विपीडयन्ते, लोकाश्चैवमनेकशः । संतोष्योऽनिमिषं तेन, कार्य एष मनीषिणा ॥३८॥

---

१ विशालभाल एव धनुः । २ भ्रूयुग्ममेव ज्या । ३ तिलकमेव बाणः । ४ देवम् । ५ प्रासादः ॥

॥ श्रीपेथडसुत-श्रीझाञ्झणप्रबन्धकथनो नाम अष्टमस्तरङ्गः प्रारभ्यते ॥

झाञ्झणकारित करहेटक प्रासाद प्रबन्धः ।



झाञ्झणस्तदनु ध्वस्तदनुजाचार्यवर्यधीः । व्यापारमकरोत्कीर्तिस्फूर्त्या हिमकरोज्ज्वलः ॥१॥ यत.—

आरम्भाणां निवृत्तिर्द्रविणसफलता सङ्घवात्सल्यमुच्चै-
नैर्मल्यं दर्शनस्य प्रणयिजनहितंजीर्णचैत्यादिकृत्यम् ।
तीर्थोन्नत्यं जिनेन्द्रोदितवचनकृतिस्तीर्थकृत्कर्मबन्धः,
सिद्धेरासन्नभावः सुरनरपदवी तीर्थयात्राफलानि ॥११६॥

प्राग् मेरुर्भूस्ततोऽब्दोऽब्धिरगस्तिः खं ग्रहा जिनः । प्रौढा एकैकतः सर्वप्रौढः सङ्घस्तदर्चितः ॥३॥
[2]तस्याप्यधिपतीभावः, पदानामुत्तमं पदम् । पुण्यैरवाप्यतेऽगण्यैर्मातृगुर्वाशिषां फलम् ॥४॥

---

१ शुक्र । २ सङ्घस्य ॥

गिरिराज तीर्थसङ्घस्य महद्-वर्णनम्।

इत्यादिगुरुगीरुद्यद्भावो देशेषु भूरिषु। सङ्घमाकारयामास, प्रेष्य कुङ्कुमपत्रिकाः ॥५॥
अर्व[1]च्छकटपृष्ठ्यादिसामग्रीं कृतपूर्विणि। द्व्यर्धलक्षे मनुष्याणां, यात्रार्थं मिलिते सति ॥६॥
वर्षे खवेददेवेन्दुमिते (१३४०) माघस्य पञ्चमी। या सिताऽऽसीत्तत्र मन्त्री, निमित्तैः प्रास्थितोत्तमैः ॥७॥
निस्वानस्वरनादिकादिनिनदैर्भट्टावलीषट्पदच्छन्दोभिर्वनितावितानधवलैर्गन्धर्वगीतारवैः।
प्रस्थाने हयहेषितैर्वृषघटाकण्ठध्वनद्घण्टिकाघोषैः स्यन्दनचीत्कृतैश्च रचितं ब्रह्माण्डमेकध्वनि ॥८॥
रङ्गत्तुरङ्गध्वजा रेजुश्चारुचामरचालनाः। तत्र द्वादशसौवर्णतोरणा अर्हदाऽऽलयाः ॥९॥
प्रत्यर्हद्गृहमेकैकं, नित्यनृत्यपरायणम्। पेटकं नर्तकीसत्कं, समृदङ्गाद्युपस्करम् ॥१०॥
द्वादशान[2]:सहस्राणि, छन्नान्यजिन[3]चीवरैः। तेषु द्वादशसङ्ख्येशाः, वसुवर्षणवारिदाः ॥११॥
कल्पितानेकशृङ्गारकण्ठशृङ्गा रैयो[4]द्धुराः। पञ्चाशच्च सहस्राणि, पृष्ठ्याः पुष्टवपुष्टमाः ॥१२॥
अस्तोकपरिवाराः श्रीधर्मघोषगुरूत्तमाः। पट्टपौषधशालाकाः, सूरयोऽन्येऽपि विंशतिः ॥१३॥
सुखासनानि वाहिन्यः, श्रीकर्यो जलपल्वलाः। सूपकाराः सूत्रधारा, इत्याद्यखिलमप्यभूत् ॥१४॥
वस्त्रौकःप्रवरास्त्रादिभारोत्पाटनहेतवे। मिलित्वा वेसरोष्ट्राणां, शतानि द्वादशाभवन् ॥१५॥
मोहराजजये सैन्यं, सार्थः सिद्धिपुरीं प्रति। जन्या मन्त्रिवरोदारपुण्यलक्ष्मीकरग्रहे ॥१६॥

---

१ अश्वरथः। २ शकटः। ३ चर्ममयवस्त्रैः। ४ वेगोद्भटा।

अखण्ड-भाव भक्त्या श्रीसङ्घवात्सल्यम्।

सङ्घः प्रयाणविश्रामैः, सञ्चाराऽथ सौख्यदैः। प्रभूतभोज्यशाकाज्यगोरसाम्भस्तृणेन्धनैः ॥१७॥
सिङ्घनं नाम सङ्घस्य, रक्षायै सह मन्त्रिणा। सेल्लहस्तं निजं राजा, प्रैषीत्परुषपौरुषम् ॥१८॥
सहस्रे द्वे तदश्वानां, शेषाणां चैकमुत्कटम्। पटमण्डपदुर्गस्य, परितो निशि बभ्रमुः ॥१९॥
भुक्तेष्वभुक्तसवषु, सुप्तेषु स्वपिति स्म च। जजागार पुनः पूर्वं, सर्वेभ्यस्तत्र मन्त्रिराट् ॥२०॥
संनद्धः सिङ्घनः पृष्ठे, तुरङ्गैकसहस्रयुक्। पञ्च पञ्च शतान्यश्वाः, पार्श्वयोः कृतरक्षणाः ॥२१॥
क्वणत्किङ्किणिकाकीर्णप्रखरोपेतवाजिनि। आरूढः प्रौढतामुच्चैःश्रवःस्थद्युपते दधत् ॥२२॥
संनद्धः सायुधः सैकसहस्रतुरगो बली। पत्तिपूरः पुरो मन्त्री, वाद्योरुध्वनिरध्वनि ॥२३॥
इत्यादिरीतिसञ्चारिसङ्घोद्धूतेन पांशुना। सुनासीरादयोऽप्यापुः, स्नानं पापापहं सुराः ॥२४॥
॥ चतुर्भिः कलापकम् ॥

आगाद्धालपुरे सङ्घस्तत्र मन्त्री शमातुलः। साधुर्नरपतिः प्रौढं, प्रवेशमहमातनोत् ॥२५॥
प्रतिष्ठाप्य चतुर्विंशत्यर्हद्बिम्बानि तत्र सः। भूसुभ्रूलोचनाकारं, चित्रकूटमुपागमत् ॥२६॥
सङ्घस्तत्र व्यधाच्चैत्यपरिपाट्यादिविस्तरम्। चित्राणि च विचित्राणि, कौतुकेन व्यलोकत ॥२७॥
सङ्घः प्राप्ततः पापोत्करहं करहेटके। उपसर्गहरः पार्श्वस्तत्र नेमे च मेचकः ॥२८॥

१ कठोरपराक्रमम्। २ इन्द्रस्य। ३ इन्द्रादयः। ४ पापसामूहहन्तरि। ५ श्याम.।

करहेटक नवीनचैत्य निर्मापणम् ।

तत्रामात्रमहोत्सवैरवसरे यस्मिन्नमात्येश्वरश्चक्रे सङ्घशतक्रतुः स चतुरैराशङ्कि तस्मिन्निति ।
भोः ! किं [1]भालविशालधन्वसरलभ्रू[2]यामलज्यामिल-
च्चारूच्चैस्ति[3]लकेषुरेष सुभटो हन्ता कलिद्वेषिणाम् ॥२९॥

मन्त्रिणस्तिलके जाते, गुरवः प्रोचुरार्य ! हे । प्रति प्रयाणं सङ्घेशः, कारयेच्चैत्यमुच्छ्रितम् ॥३०॥
तदशक्तौ तु यत्रासीत्तिलकं तत्र सङ्घराट् । अवश्यं कारयेज्जैनं, गेहं देहं शिवश्रियः ॥३१॥
श्रुत्वेति त्वरयाऽऽरेभे, चैत्यं कारयितुं तदा । एकत्र तत्र सङ्घेन्द्रः, परं पतति तन्निशि ॥३२॥
द्वित्रस्थानेष्विति क्षेत्रपतिस्तत्रत्य उद्धतः । नव्यं विहारं संसेहे, कार्यमाणं न मन्त्रिणा ॥३३॥
पुरा तत्राऽस्ति वामेयचैत्यं लघ्विति तन्नवम् । कर्तुमारम्भयास, पातयत्येतदप्यसौ ॥३४॥
मन्त्रिणा क्रियमाणेऽथ, प्राणे सङ्घजनेषु सः । लग्नः कोपादुपद्रोतुं, शिरोर्तिज्वरमारणैः ॥३५॥

सङ्घमुख्यैस्तदाख्यायि, मुधा मा क्रियतां बलम् ।
मनुजा निर्जरं जातूर्जस्वित्वेन न जेज्यति ॥३६॥

द्रौपदीप्शितपद्मार्थं, तडागाऽगाधमध्यगाः । नाकिना बलिना किं न, बद्धाः पञ्चापि पाण्डवाः ॥३७॥
बाढं सङ्घे विपीडयन्ते, लोकाश्चैवमनेकशः । संतोष्यों[4]ऽनिमिषं तेन, कार्य[5] एष मनीषिणा ॥३८॥

१ विशालभाल एव धनुः । २ भ्रूयुग्ममेव ज्या । ३ तिलकमेव बाणः । ४ देवम् । ५ प्रासादः ॥

धूपोत्क्षेपण-पुष्पार्चा-बलि-बाष्पाकुलादिभिः। तदाराद्धः पुरः प्रादुर्भूयाऽभाषिष्ट स द्युसत् ॥३९॥
दास्ये नोपलमप्यस्य, किलोत्कीलयितुं तव। नव्यं कारयितुं चैत्यं, चास्य क्वचन सीमनि ॥४०॥
अस्यैव परितः कर्तुं, तर्हि देहीति तद्गिरा। अनुमेने तथाभक्तिभङ्गुरः केवलं सुरः ॥४१॥
तच्चैत्यमन्तरे क्षिप्त्वा, पादाक्रान्तोदकस्ततः। प्रासादः सप्तभूमोऽन्दमण्डपादियुतोऽरचि ॥४२॥

॥ इति झाञ्झणकारित-करहेटकप्रासादप्रबन्धः ॥



करहेटक-पार्श्वजिनं नत्वा जिरापल्ली गमनम्।

एत्याघाटपुरेऽथ तत्र च बहुष्वर्हद्गृहेष्वर्हणाद्यारच्य प्रचुराणि सङ्घजनता पुण्यानि सा प्रापुषी।
या सोपानशता जिता गणिकया हार्षी च या शाङ्करी, वापी दूनसुता जलार्थजनिताऽपश्यत्तदादीन्यपि ॥४३॥
ततो नागह्रदे नत्वा, नवखण्डजिनाधिपम्। जीरापल्ल्यां ययौ सङ्घो, गृहीताभिग्रहव्रजः ॥४४॥
ननाम कामना-कोटिपूरकं दुःखदूरकम्। महिमासुन्दरं स श्रीपार्श्वं भोगपुरन्दरम् ॥४५॥
प्रभावसौरभाकृष्टाः, स्तुतिझङ्कारिणोऽभितः। यस्यायान्त्यनघाः सङ्घाः, भृङ्गौघाः स्वस्तरोरिव ॥४६॥

---

१ देवः। २ पूजा॥

तस्य स्नात्रं श्रियः पात्रं, पूजां कोटिप्रसूनजाम्। धूपं षण्मणकर्पूररूपं निर्माय धीसखः ॥४७॥
आमुक्तमौक्तिकं हेम-तन्तुगर्भदुकूलकम्। वितानं मण्डपेऽबध्नाद् द्रम्मलक्षेण कारितम् ॥४८॥
ततः पुष्पफलाढ्याऽष्टादशभारवनस्पतिम्। तुङ्गत्वस्वर्भिदाशङ्काकुलीकृतदिवस्पतिम् ॥४९॥
द्वादशोच्चद्युलोकाध्वप्रायपद्याद्यनुत्तरम्। मन्दाकिन्यादिमिथ्याहक्तीर्थपङ्क्तीर्दधत्तरम् ॥५०॥
आरुरोहोरुश्रृङ्गान्तक्रीडदम्बुदमर्बुदम्। सखेदस्वेदभेदस्विदेहप्रीतिदमारुतम् ॥५१॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥
चैत्यं विन्ध्याधिकायामं, कैलासाधिकनिर्मलम्। हिमालयाधिकहिमं, मलयाधिकसौरभम् ॥५२॥
चन्द्रावतीपुरीन्द्रेण, द्वादशच्छत्रशालिना। सौधबद्धाश्वलक्षेण, विमलेन विधापितम् ॥५३॥
मृद्वेकमदनोत्कीर्याः, कोरणीरेनणीयसीः। बिभ्राणं तत्र सोऽद्राक्षीच्चक्षुषाममृताञ्जनम् ॥५४॥
त्रिभिर्विशेषकम् ॥
मौक्तिकस्वस्तिकाभिज्ञाऽऽविर्भूतमृषभं प्रभुम्। अभ्यर्च्य वितंतां तत्र, दिव्यक्षौमध्वजां ददौ ॥५५॥
षट्कलंच्छन्नमेदिन्यां, सार्धद्वादशकोटिभिः। कोरणीनिकरेणाढ्यं, तेजःपालेन कारितम् ॥५६॥
चैत्यमत्यद्भुतं चैत्य, मन्त्रिप्रभृतयो जनाः। स्नात्रपूजाध्वजादीनि, तेनिरे ते निरेनसः ॥५७॥

---

१ चन्द्रोदयम्। २ महतीः। ३ अभिज्ञानं–चिन्हम्। ४ विस्तीर्णाम्। ५ वीघाजेवुंजमीनतुंमाप। ६ च एत्य। ७ निष्पापाः ॥

भिल्लैः सह मन्त्री सिङ्घनयोः युध्धम् ।

ततश्चन्द्रावतीपुर्यां, नमस्कृत्य जिनेश्वरान् । सोऽचालीच्चैत्यचारुश्रि, तीर्थमारासणं प्रति ॥५८॥
कियत्युल्लङ्घिते मार्गे, भैरवी भैरवारवा । वामतः शुश्रुवे सर्वैराशु व्यसनसूचिनि ॥५९॥
क्षणं स्थित्वा तदा सङ्घश्चचाल चकितोऽग्रनः । सज्जीभूतभटौ चाग्रेऽभूतां धीसखसिङ्घनौ ॥६०॥
इतश्च नाम्ना मुञ्जालः, स्वामी कुण्डालनीधृतः । सङ्ग्रामोत्कटलुण्टाकघटानां मुकुटायितः ॥६१॥
श्रुत्वा सङ्घमवन्तीनामायान्तं धनपूरितम् । मेलितोद्भटभिल्लौघोऽध्वानं यध्दूवा स्थितोऽभवत् ॥६२॥
स बुध्दूवा पटहध्वानैः, सङ्घमासन्नमागतम् । दधावे काहलोत्तालत्राट्कारैः स्फाटिताम्बरः ॥६३॥
प्रससार शराऽऽसारः, काहलारवगर्जिनः । कालकायः किरातौघस्तस्य कल्पान्तमेघवत् ॥६४॥
कम्पमानस्तदा लोकस्तदालोकनतोऽखिलः । नमस्कारेष्टदेवादिस्मरणैकपरोऽजनि ॥६५॥
उद्यानं भूषणोत्तारं, धनाधानं धरोदरे । जालान्तर्नाशमित्यादि, व्यधाल्लोकः पृथक् पृथक् ॥६६॥
धीरयित्वा तदा सङ्घं, सुभटोत्साहनापटू । किरातध्वान्तविध्वंसादित्येन्दू मन्त्रिसिङ्घनौ ॥६७॥
तुरङ्गादिरवोन्मिश्रैरनुवादितपर्वतैः । ढोल्ल-गाढोल्लसद्ध्वानैः, कृतकातरकम्पनौ ॥६८॥
भिल्लग्रास-कृतोल्लासयमजिह्वोपमायुधैः । सुभटैरन्वितौ योद्धुं, सद्यः प्रत्युदतिष्ठताम् ॥६९॥
त्रिभिर्विशेषकम् ॥

१ चीबडी इतिलोके । २ रौद्रशब्दा । ३ मार्गम् । ४ मुञ्जालः । ५ ज्ञात्वा ॥

प्रल्हादनपुरे श्रावक-सङ्ख्या-वर्णनम् ।

तदा चायान्त एवादौ, तयोः सादिपदातयः । भिल्लबाणैः पलाय्यन्त, सिंहनादैरिव द्विपाः ॥७०॥
लब्धप्रसरमायान्तीमथ भिल्लविरूथिनीम् । मत्सरात्तावरुत्सातामभ्रूपातेषुवर्षणैः ॥७१॥
न पत्तिर्नाश्ववारो न, भुञ्जालोऽप्यग्रतः पदम् । दत्ताज्ञ इव दत्ते स्म; कोऽपि तत्पत्रिणां पुरः ॥७२॥
बहिरन्तस्तयोरात्तधर्मायोमयवर्मणोः । व्यर्था भिल्लेषवोऽभूवन्, वज्रे लोहघना इव ॥७३॥
मेने चायःकपाटौ तौ, सङ्घः स्वकृतरक्षणौ । किरातौघस्तु कीनाशभुजौ स्वध्वंसनोद्यतौ ॥७४॥
तौ भूयो ढौकमानाश्ववारादिपरिवारितौ । जर्जरीकृत्य बाणैस्तान्, नाशयामासतुस्तदा ॥७५॥
वर्धापनानि माङ्गल्यवाद्यबन्दारवैः समम् । श्रीसङ्घ च व्यधीयन्त, व्यपेतव्यसनैर्जनैः ॥७६॥
धातुसप्तकशुभ्राश्मखान्यधिष्ठायिकाम्बिकम् । क्षेमेणारासणग्रामं, सङ्घः सोऽगात्ततोऽनघः ॥७७॥

तत्राप्यर्चिततीर्थकृत्ततिरथ श्रीकारणं तारणं सङ्घोऽभ्येत्य कुमारपालपरमक्ष्मापालनिर्मापिते ।
चैत्ये चित्तमुदर्पके द्विपुरुषीविस्तारिवाहामितस्थौल्यस्तम्भविराजितेऽजितजिनं पुष्पादिनाऽपूपुजत् ॥७८॥

प्राप प्रल्हादनपुरमितस्तत्र नेत्रप्रचारादेव प्रल्हादनन्नृपतनूल्लोघनः पार्श्वदेवः ।
यस्यायान्त्याश्रमवसुमिताः(८४) श्रीकरीभ्याश्च पूगैः, पूर्णा गोणी मिलति दिवसे मूटकश्चाक्षतानाम् ॥७९॥

---

१ धर्ममयलोहमयसन्नाहयोः । २ रोगमुक्तः ॥

शत्रुञ्जये आभूश्रेष्ठिनः आगमनम्।

तत्रार्चित्वा जिनमवृजिनं तं तदन्यांश्च दृष्ट्वाऽऽश्चर्यैः पश्चादणहिलपुराद्ध्वनात्तप्रयाणः।
निष्प्रत्यूहः कतिपयदिनैः सोऽथ सङ्घातघाती, सङ्घः शत्रुञ्जयमगमयद्दृग्पथे तीर्थनाथम् ॥८०॥
स्थित्वा तत्र च मन्ये्कादशगोधूमसूटकैः। लपनश्रियमारक्तां, पञ्चधारामकारयत् ॥८१॥
तीर्थालोकजरङ्गस्य, वर्णिकां तु गरीयसः। सङ्घे तल्लम्भनव्याजादशेषेऽदर्शयच्च सः ॥८२॥
वाद्यध्वाननटीनृत्योल्लुलुगानादिडम्बरैः। पादलिप्तपुरे सङ्घस्ततः प्रापदपापधीः ॥८३॥
स सङ्घो लघुकाश्मीर इङि सेरजनश्रुतेः। स्थिरापद्राद्उपेन्द्रश्रीराभूरप्यायर्यौ तदा ॥८४॥
प्रभावकधुरीणः श्रीश्रीमालज्ञातिमण्डनम्। विरुदं पश्चिमो माण्डलिक इत्याप यो जने ॥८५॥
शकटानां सहस्राणि, यस्य सङ्घ चतुर्दश। बिम्बानां दशयुग्पञ्चदशसंख्यशतानि (१५१०) च ॥८६॥
शतानि सप्तार्हद्धाम्नां (७००,) जलपट्टास्त्रयोदश १३। सप्त प्रपाः सप्तचत्वारिंशद्वार्वाहिनो वृषाः (४७) ॥८७॥
द्वाविंशतिशतान्युष्ट्राः (२२००,) खेन्द्रिपूर्वोमिता हयाः (१५१०)।
सुखासनानि नवतिः (९०,) श्रीकर्यः सा नवाधिकाः (९९) ॥८८॥
त्रिशत्यम्भोल्लुलायानां (३००,) लोहकाराश्चतुर्दश (१४)।
शतं कान्दविकाः सूदाः, कटाहा रन्धनाय च (१००) ॥८९॥

---

१ निर्विघ्नः। २ उल्लुलुःमङ्गलध्वनिः। ३ नारायणवत्श्रीः। ४ जलवाहका वृषभा.। ५ नवतिः। ६ जलवाहकमहिषा ॥

सङ्घपतिद्वय कृता गिरिराजे विस्तीर्णा पूजा ।

शिलावर्ताः खबाणाङ्काः (५०,) मालिका द्विशतीमिताः (२००) ।
ताम्बूलिकानामृद्धानां, शतं पञ्चकुलानि च (१००) ॥९०॥

खर्तुद्दग्मितहट्टानि (२६०,) काष्ठभारैकवाहकाः । हस्तेषुहयभूम्यङ्का (१७५२,) षट्त्रिंशत्सूरयोऽपि च ॥९१॥
तेन[2] प्रथममारोढुं, ददे वैदेशिकातिथेः । मन्त्रिणो मानमारूढः, ससङ्घः स च सोत्सवम् ॥९२॥
मरुदेवाकपर्द्यादिपूजाकृच्छिखरे गिरेः । वन्दित्वा श्रीयुगादीशं, विदधे स्नात्रविस्तरम् ॥९३॥
मुक्ताविद्रुमरैरूप्यप्रसूनैः पूजनादनु । चक्रे त्रिकोटिपुष्पार्चां, ध्वजनीराजना[3]श्रिताम् ॥९४॥
मुक्ताविद्रुमसौवर्णरौप्यटङ्कसुमादिभिः । वर्धापयित्वा मूर्ध्नि स्वे, प्रियाल[4]द्रुमवर्षयत् ॥९५॥
उत्ततराथ रैनीरेः, कृत्वाऽब्द इव वर्षणम् । प्रभूतं भूरिभक्त्या भूसङ्घं चाऽबूभुजद् बुधः ॥९६॥ यतः—

"सङ्घः पुण्यं परं सूतेऽन्यथाऽपि कृतगौरवः । किं पुनस्तीर्थयात्रार्थप्रस्थानस्थिरमानसः ॥११७॥" यथा—
पुराऽपीन्दुर्मुदे सिंहः, साहसी तिलकैः शुभः । विशिष्यन्ते तु ते युक्ताः, पक्षान्तप्रेक्षराक्षसैः ॥११८॥
यो यियात्रयिषोः पुंसो, भावो विवलिषोः स न । आज्याऽजिनार्थिवचेन, स्यादाशयविपर्ययः ॥११९॥"

भूधमाभूरथारोहदाकार्य सह मन्त्रिणम् । सविशेषमशेषं चाकार्षीत्स्नात्रादिविस्तरम् ॥९७॥

१ शलाट इति लोके । २ आभूसङ्घपतिना । ३ आरात्रिका । ४ राजादनवृक्षम् । ५ घृतं चर्म च क्रेतुकामयोः पुंसोर्यथाक्रमं पशुजीवनमरणविपयकत्वेनाशयो भिद्यते ।

पट्टांशुकैर्विविधवर्णधरैरदभ्रसंध्याभ्रविभ्रमविधायिभिरीक्षकाणाम् ।
प्रासाददेवकुलपादपगण्डशैलशृङ्गादिषु ध्वजशतानि पुनर्बबन्ध ॥९८॥ यतः—

"शृङ्गं तन्न शिला सा न भूमिः सा न तरुः स न । सिद्धानां कोटयो नासन्नद्रिराजेऽत्र यत्र भोः ! ॥१२०॥"

आभूड्-पति कृता पेथडसुत सङ्घस्य भक्तिः ।

भवाब्धिसिंहलेऽस्तीह, धर्महस्तोश्वराजनम् । केवलज्ञानरत्नाप्तिः, सिद्धिश्रीपद्मिनीवृतिः॥९९॥
पर्वताः खर्वताहीनाः, विहाराश्चित्तहारिणः । प्रतिमा द्युतिमालिन्यः, सन्तीदृक् क्वापि न त्विला ॥१००॥
वस्तुपालोऽत एवैतां, सर्वसङ्घसखः सुभैः । निष्कमूल्यैः क्रमाज्जातैरप्यानर्च गिरिक्षितिम् ॥१०१॥
ततोऽवरुह्य सङ्घेन, समं झाञ्झणमन्त्रिणम् । भोजयामास भूयस्या, भक्त्या स च विसिष्मिये ॥१०२॥
स्वं निन्दन् व्यथिताल्पस्वं, शंसंस्तं बहुरैव्ययम् । सोऽथ तीर्थेशमाप्रष्टुमारूढः पञ्चषैर्दिनैः ॥१०३॥
जातोत्साहो जिनं नत्वा, रैध्वजां पूर्वकारिताम् । आरभ्यादीशितुः शीर्षाद्दण्डं यावदबन्धयत् ॥१०४॥
तस्मै वर्धापनीं तस्याः, वृद्धो तद्दन्वको ददौ । सद्भिः सर्वेषु कार्येषु, वस्तूनां सा हि शस्यते ॥१०५॥
ततोऽजोघटद्दानन्दात्, कलादैरग्रतोऽपि ताम् । चिहस्त्युरुकरायामस्वमेष (?) स्वर्णपट्टिकाम् ॥१०६॥
राजतीपट्टिकाऽधस्तादुपरिष्ठाच्च काञ्चनी । मध्ये ध्वजाभिधं क्षौममीदृक्षा सा विधीयते ॥१०७॥
वीराङ्क (९२) देवकुलिकामेखला नेमिसद्मसु । सरसोऽनुपमाख्यस्य, चैत्ये बद्ध्वा ततोऽचलत् ॥१०८॥

१ मुक्तिसंपद्रुपपद्मिनीकन्यावरणम । २ ध्वजायाः । ३ वृद्धिः । ४ सुवर्णकारैः । ५ ध्वजा ॥

ददानस्तां पञ्चवर्णदुकूलावृतशाखिषु। गिरिवर्त्मन्यचालीत्साऽपतत्पन्थास्तदन्वसौ ॥१०९॥
पताका यावती नाडिंधमैर्निर्मीयतेऽन्वहम्। यात्युर्वीं तावतीं सङ्घः, इति रीतिप्रयाणकैः ॥११०॥
पर्वतं रैवतं प्राप्यारूढः सोऽवनिपावनम्। दत्त्वा श्रीनेमिशीर्षे तां, तच्चैत्यशिखरे ददौ ॥१११॥
संलग्नां तां चतुष्पञ्चाशद्घटीहाटकस्य सः। अतिष्ठपन्त्यहं मुक्तप्रतियोजनयामिकाम् ॥११२॥
स मन्त्री मालवस्वामी, सत्यं मे प्रति भात्यदः। येनाप्राप्तिमतैकैव, ध्वजा तीर्थद्वये ददे ॥११३॥

झाञ्झणेन तीर्थद्वये सुवर्णमयी-ध्वजा दत्ता।

अन्तःसंततकेलिमज्जनमिलद्विद्याधरस्त्रीवपुः
स्वर्णोन्मिश्रणचारुचन्दनरजःसङ्गेन पिङ्गोदका।
श्रीपृथ्वीधरनन्दनैकदिनकृत्तीव्रप्रतापातपाच्छु-
ष्कप्रायतया विहस्तिविततस्रोताः किमु स्वर्धुनी ॥११४॥

॥ इति झाञ्झणतीर्थद्वयैकध्वजप्रदानप्रबन्धः ॥



१ ध्वजाम्। २ सुवर्णकारैः। ३ पक्षे लक्ष्मीलवस्वामी। ४ अर्द्धहस्तविस्तीर्णप्रवाहा। ५ आकाशगङ्गा।

झाञ्झणकर्पूरार्पण-नृपकरोड्डयनप्रबन्धः ।



कर्णावती पुरपरिसरे मागधस्य आगमनम्।

तादृगद्भुतकर्तव्यात्रिलोकीमौलिदोलकः। मन्त्रीशो वामनस्थल्याद्यध्वना ववले: ततः ॥११५॥
प्रभासादिबहुस्थानेष्वानंसीदर्हतो मुदा। देवदेशः सुराष्ट्रा हि, तीर्थवीथीमयत्वतः ॥११६॥
अर्वाक्कर्णावतीपुर्याः, कोशेषु त्रिषु स क्रमात्। आगत्योदतरद्धर्मक्षीरोदतरदाशयः ॥११७॥
सारङ्गनृपसम्मान्यस्तावता कोऽपि मागधः। वागधःकृतवागीशः, सङ्गमीक्षितुमागमत् ॥११८॥
तदालोकी बृहद्वासोवप्रस्थकपिशीर्षकः। चतुष्प्रतोल्यतुल्यश्रीरङ्घिदिग्मित (८४) लङ्ककः ॥११९॥
तुङ्गमध्यगमन्त्रीशवासोहर्म्यमनोहरः। दिक्कुक्षिम्भरिभेर्यादिवादित्रध्वनिबन्धुरः ॥१२०॥
परस्सहस्रवस्त्रौकस्त्रौकमाणजनाकुलः। बहिःस्थारक्षकत्रानो, मण्डपावतरोऽखिलः ॥१२१॥

त्रिभिर्विशेषकम् ॥

द्वाःस्थदत्तप्रवेशोऽथ, श्रीसङ्घेशनिदेशतः। स पश्यंस्तत्र चित्राणि, प्रापोपसचिवं सुधीः ॥१२२॥
पुरस्थं चिन्तयाचान्तमब्रुवन्तं च वीक्ष्य तम्। पृष्टः स मन्त्रिणाऽभाणीद्देवासि विमृशन्निदम् ॥१२३॥

१ चत्वरः चौटुं इतिभाषायाम्। २ प्राप्नुवन्तः। ३ चिन्तया व्याप्तम् ॥

प्राकारादिक-रामणीयकरमास्वर्गानुकारं करग्राह्यं मण्डपदुर्गनाम नगरं निर्माय तेनाऽन्वितः ।
गर्जद्दुर्जयगूर्जरावनिपुरामादित्सयाऽवन्तिषु, प्राप्यस्तव तस्य धीसखशिखारत्नस्य केनोपमा ॥१२४॥
तुष्टः पश्चाद्ददौ मन्त्री, तस्मै भूरिधनं तथा । नव्याङ्कवाहिं वाहेन्द्रं[1], हेमशृङ्खलवेष्टकाः ॥१२५॥
तोषितस्तुरगारूढस्तत्कालं चलितः स च । भूपस्याग्रेऽगमत्तेन,क्वेदं प्रापीत्यपृच्छयत ॥१२६॥
बन्दिनाऽवादि देवेदं, वेदं[2] मन्यस्व यन्मया । लब्धो मण्डपदुर्गेऽयं शृङ्गारोऽद्यैव जग्मुषा ॥१२७॥
हसित्वा पार्थिवोऽपीत्थमब्रवीद्बन्दिनां वर ! । भट्टो दशगुणं ब्रूते, इत्युक्तिमवृथाऽकृथाः ॥१२८॥
न ह्येकगुणमप्याख्यमित्युक्ते बन्दिना तु सः । अस्तु वा वद किं तत्र ?, सम्प्रत्यस्तीति पृष्टवान् ॥१२९॥
तदोचे बन्दिना तत्र, राज्यभुग् झाञ्झणो नृपः । योऽचलं मण्डपं नव्यो, विरिञ्चिरकरोच्चलम् ॥१३०॥
भूपेन कथमित्युक्ते, सोऽवग् देवाऽस्ति झाञ्झणः । अवन्तिसचिवः प्रौढसङ्घेनात्रागतोऽन्तिके ॥१३१॥
मण्डपावतरस्तस्य, सर्वः सिचयनिर्मितः । सार्धं चलति यो मन्त्रियशसे वाऽखिलः सितः ॥१३२॥
इत्यादिवर्णनां तेन, कृतामाकर्ण्य कर्णसूः । विवेको कौतूकी शोभामनिभां[3] पुर्यकारयत् ॥१३३॥
तदेभा गुण्डिता रेजुस्तुङ्गाः प्रक्षरिता हयाः । छत्राण्युरूणि वाद्यानि, हृद्यानि पटवो भटाः ॥१३४॥
भूपः सर्वर्द्धिवर्धिष्णुशोभः क्षोभितभूरिभैः । ततः प्रास्थित सङ्घेशाभिमुखं मुक्तमत्सरः ॥१३५॥

सारङ्गनृपतेः सङ्घेशामिमुखं गमनम्।

---

१ तुरगेन्द्रम् । २ प्रमाणम् । ३ उत्कृष्टाम् ॥

झाञ्झणकृत-नृपति सत्कारः ।

सचिवोऽपि श्रियं सङ्के, तोरणोच्चध्वजादिभिः । विधाप्य विविधां भूपमभ्यगाद्गुरुडम्बरः ॥१३६॥
अदूरदशसङ्केशैकाविंशतिमहाधुरैः । सहोत्ततार वाहेन्द्राद् दूराद् वीक्ष्य स भूपतिम् ॥१३७॥
नृपोऽप्यन्तिकमागत्याऽवातरद्वारणेन्द्रतः । द्वात्रिंशत्ते तदा लग्नाः, पुरो मुक्तोपदाः पदोः ॥१३८॥
राजा सम्मान्य तांस्तेषु, विशिष्य सचिवं पुनः । स्वेनारुह्य हयं तैरप्यश्वेष्वारोहयद्बलात् ॥१३९॥
प्रस्थितोऽथ पुरोऽपश्यन्मण्डपावतरं नृपः । क्षीरोदमिव कल्लोलतुल्यानिलचलद्ध्वजम् ॥१४०॥
प्रदक्षिणनतो वीक्ष्य, प्रतोलीस्तुङ्गतोरणाः । विवेश च बहिर्मुक्तहस्त्यश्वादिपरिच्छदः ॥१४१॥
मन्त्रिपत्नी ततः सौवपटसौधमुपागतम् । नृपं वर्धापयामास, स्थालस्थापितमौक्तिकैः ॥१४२॥
मध्यमागत्य सिंहासन्युपविश्य विशांपतिः । स्वागतादिकमप्राक्षीज्झाञ्झणादीनदीनगीः ॥१४३॥
द्वात्रिंशत्ते व्यधुश्चैकलक्षटङ्कोपदां मुदा । प्रौढो ह्यभ्यागतोऽन्यच्च, स प्रवेशोत्सवं चिकीः ॥१४४॥
स च राजोड्डयेत स्वं, पाणं न क्वापि दक्षिणम् । याञ्चाया लक्षणं हीदं, सा च लाघवकारणम् ॥१४५॥

यदुक्तम् —

"तृणं लघु तृणात्तूलं, तूलादपि हि याचकः । वायुना किं न नीतोऽसौ ?, मामयं प्रार्थयिष्यते ॥१२१॥"

तस्मात्ताम्बूलमायाते, दातुं मन्त्रिणि भूपतिः । आच्छिद्य जगृहे तस्य, पाणितः स्वेन बीटकम् ॥१४६॥

---

१ मुक्तोपहाराः ॥

कर्पूराय गतो मन्त्री, चकितः किन्तु चेतसि । पृष्टभूपजनोऽज्ञासीद्वीटकाच्छेदकारणम् ॥१४७॥
ततः कर्पूरमानीय, मानातिगमनामयत् । पाणौ भूपस्य पश्यत्सु, जनेषु सकलेषु सः ॥१४८॥
सशिखं तेन जात्येन, हस्ते वामे भृते सति । तद्भू-पाते नृपः पाणिं, दक्षिणं सहसा दधौ ॥१४९॥

भिन्नस्याधमकर्मनिर्मितपटोर्वामस्य पाणेस्तदा,
श्रेयःकार्यपरम्पराप्तपरमप्रौढिर्यदन्योऽतनोत् ।
कर्पूरे सति यानि रक्षणकृते साहाय्यमस्तव्रत-
स्तज्ज्ञानेऽजनि लोहितस्य लपनं स्वाजन्यजन्यं हि तत् ॥१५०॥

धारिते दक्षिणे पाणावासीज्जयजयारवः । स्मितं च तेनिरे राज्ञा, समं सामन्तकादयः ॥१५१॥
केऽप्यौदार्यं धियं केचित्तत्र केचन साहसम् । मन्त्रिणो वर्णयामासुर्लोकास्तदवलोकका: ॥१५२॥
शुद्धजन्म सुसौरभ्यं नृदेवादेयमुज्ज्वलम् । कर्पूरं यादृशं सोऽदात्तादृशं चाददे यशः ॥१५३॥
न कोऽप्यदीधपद् यं मे, हस्ते तद्धापनात्तव । तुष्टो वृणु वरं राज्ञेत्युक्तो मन्त्री ततो जगौ ॥१५४॥
वचोऽविचलताद्युच्चैर्गुणकौसुमशालिनः । त्वद्देवतरुतो देव !, याचिष्येऽवसरे वरम् ॥१५५॥

चमत्कारकारी-नृप कर्पूरार्पण प्रसङ्गः ।

॥ इति झाञ्झणकर्पूरार्पण-नृपकरोड्डयनप्रबन्धः ॥



तदनूत्थाय भूपालः, सङ्क्वेशांस्तुङ्गहस्तिषु। आरोह्याऽऽवेशयत्कर्णावतीपुर्यतुलोत्सवम् ॥१५६॥
ते च सौधं स्वमानीय, परिधाय च भूभुजा। दत्तावतारकावासास्तस्थुस्तत्र दिनत्रयम् ॥१५७॥
श्वभ्रमत्यापगोपान्ते, मण्डपाडम्बरे कृते। निवेद्य नृपतेस्तेनाऽनुज्ञातास्तत्र ते ययुः ॥१५८॥
पुरा बन्दीकृतान् श्रुत्वाऽन्यदा षण्णवतिं नृपान्। मुमोचयिषुरायासीन्मन्त्री धात्रीधवाऽन्तिके ॥१५९॥
आसाद्याऽवसरं चाख्यद्युष्माभिर्यस्तदा ददे। प्रसादीक्रियतां देव !, सोऽद्य कोशगतो वरः ॥१६०॥
ब्रूत किं भवतामिष्टमित्युक्तो भूभुजा तदा। धनदानादयाचिष्ट, शिष्टः षण्णवतिं नृपान् ॥१६१॥
श्रुत्वेदं चावनीपालश्चिन्ताचान्तमनाः स्थितः। न यद्दत्तं रसे पश्चात्तद्दानं दुष्करं भवेत् ॥१६२॥
महतोऽपि च दानस्यावसरे कम्पते वपुः। संचुकोच रणे भीमो, दानदातव्यशङ्कया ॥१६३॥
अरोचितमिव ज्ञात्वा, मोचनं धृतभूभुजाम्। चतुरोऽन्तरयामास, वार्तान्तरकरस्ततः ॥१६४॥
पात्रे दानं जले तैलं, खले गुह्यं यथा तथा। उत्थायाऽथ गते भूपे, वार्ता सा विस्तृता जने ॥१६५॥
यात्रां कृत्वाऽऽगतश्चाभूर्वृत्तान्तं श्रुतपूर्व्यमुम्। यशःपुण्येच्छया भूपच्छोटनायौत्सुकायत ॥१६६॥ यतः—

"यद्वत्कर्कर-कम्बुरत्नमुदधौ नाशाङ्गभोगव्ययत्यागं च श्रियि पत्रपुष्पफलमप्युर्वीरुहि श्रीफले।
काये रोगमलोपकारकरणं दुष्कर्मकीर्त्यर्जनापुण्यं चाधममध्यमोत्तमतया तद्वन्मनुष्यायुषि ॥१२२॥"

दशोत्तरशतं वाहांस्तुङ्गान् गङ्गाजलोज्ज्वलान्। यानपात्रागतांस्तत्रागमल्लात्वा ततो निशि ॥१६७॥

बन्दीकृतान् नृपान् मुक्त्यर्थं राज्ञे निवेदनम्।

आभू याचनया बन्दि मोचनम्।

सुप्त एव नृपे सौधं, परितो हर्षहेषिभिः। तुरङ्गैस्तरलैराभूरबध्नाद्वल्लिमायताम् ॥१६८॥
वाद्यनिर्घोषतद्धेषाद्यस्तनिद्रस्ततो नृपः। प्रातरुत्थाय चेद्वीक्षाञ्चक्रेऽपश्यत्तदा हयान् ॥१६९॥
ताडङ्कं मौक्तिकानीव, हंसा इव सरोवरम्। चैत्यं देवकुलानीव, ते सौधमभितो बभुः ॥१७०॥
विस्मयस्मेरदृग् राजा, पश्यंस्तानित्यचिन्तयत्। कस्यामी केन वा कस्मै, कार्यायेह हयाः सिताः ॥१७१॥
प्रधानस्तज्ज्ञातपूर्वी, तावदागत्य कोऽपि तम्। नत्वा विज्ञप्तवानाभू र्बबन्धैतानधीश्वर ! ॥१७२॥
क्व सोऽगादिति तत्पृष्टे, प्रधानः स्माह सम्प्रति। नन्तुमेष्यति वस्तावदागादाभूः सढौकनः[2] ॥१७३॥
विज्ञप्तस्तेन धृतभूपतिमोचनहेतवे। राजाऽवग् झाञ्झणेनैते[3], मार्गिता अथ सोऽवदत् ॥१७४॥
विज्ञप्तं झाञ्झणेनैतद्विधौ नैत्वाश्रुतं[4] त्वया। अस्तु तन्मे प्रसादोऽसौ, देव ! नैवं हि दूषणम् ॥१७५॥
गूर्जरायामियत्यामप्येकोऽपीभ्यो न तादृशः। मन्त्रिणा मालवीयेन, मोचितास्तन्महीभुजः ॥१७६॥
इत्यम्भस्तव देशस्याप्युत्तरिष्यति चान्यथा। इत्याद्युक्तं हृदादर्शे, राज्ञः प्रत्यफलत्तदा ॥१७७॥
ततश्चाकार्य पश्चाङ्गपरिधापनपूर्वकम्। द्वयोरुपर्यमुञ्चद् भूपतीन् षण्णवतिं नृपः ॥१७८॥
दत्तोऽभून्मे वरस्तस्मादयं पूर्वमयाचत। भूपालास्तु द्वयोर्दत्ता, मया न्याय्यं कृतं न तत् ॥१७९॥
अन्यच्च प्राघुर्णः[5] प्रौढश्चायं तन्माऽस्य मानसे। दोदूया भूदिति ध्यात्वा, धनं नालास्तु मन्त्रिणः ॥१८०॥

१ बद्धाः। २ सप्राभृतः। ३ राजानः। ४ न चाकर्णितम्। ५ अतिथिः।

राज्ञोऽदात् षण्णवत्यर्धं, टङ्कलक्षास्तदा परः । हस्तिभ कैकसिक्थाभास्तस्य तास्तु बहुश्रियः ॥१८१॥
एकैकं च हयं पञ्च, पञ्च क्षौमाणि झाञ्झणः । दत्त्वा भूमीभुजः प्रैषीत्सर्वान्निजनिजास्पदे ॥१८२॥
राजसाधारको राजबन्दिच्छोटक इत्यतः । उचिते बिरुदे धत्ते, महनीयो महाजनः ॥१८३॥
उभाभ्यामपि भूपालाः, मोचितास्तत्र चार्पिपत् । द्रव्यमाभूरभूत्किन्तु, सचिवस्यैव विश्रुतिः ॥१८४॥ यतः–

"संभूयापि कृतं कार्यं, प्रधाने हि फलप्रदम् । पश्य वर्योपनीलाभे, भवेज्जिह्वैव हैमनी ॥१२३॥
मासि मासि समा ज्योत्स्ना, पक्षयोः श्वेतकृष्णयोः ।
तत्रैकः शुकूलतां यातो, यशःपुण्यैरवाप्यते ॥१२४॥"

॥ इति झाञ्झणकृतषण्णवति ९६ राजबन्दिमोचन-प्रबन्धः ॥



जातोपलक्षणप्रीतिं, तं बुभोजयिषुर्नृपः । स्वामात्यमन्यदा प्रैषीत्तन्निमन्त्रणहेतवे ॥१८५॥
सोऽवग् गत्वा जनोऽसङ्ख्यः, सङ्घे ते सचिवास्ति तत् ।
सैन्यबाहाधृतिन्यायात्कस्तं भोजयितुं प्रभुः ॥१८६॥

१ प्रसिद्धिः । २ मुख्ये ।

तद्भूपतिरसाराणामप[1]सारणतो नृणाम् । सारणां तत्सहस्राणां, क्रियतां भोजनं चिकीः ॥१८७॥
वाः पाताप्यतिथिःकूलप्रपातकव्रानकर्तनः । ते तु यात्राकृतोऽनेके, भुक्त्या मुक्त्यावहा न किम् ।१८८॥
सद्यः प्रसद्य तत्तेषां, सहस्रैः पञ्चभिः सह । पादोऽवधार्यतां नेदं, व्यर्थनीयं निमन्त्रणम् ॥१८९॥
मन्त्र्याख्यद्युक्तमेव क्ष्मापतिरेतच्चिकीर्षति । भू[2]पोपज्ञं हि लुप्तांहःस्फीतयः पुण्यरीतयः ॥१९०॥
परं साधर्मिकाः सर्वे, लोका मे बान्धवाधिकाः । माननीयाः पूजनीयाः, सङ्घे कष्टेन मीलिताः ॥१९१॥
तांश्चान्नग्रासमात्रार्थं, गौरगौरवशालिनः । यद्यसारानहं कुर्वे, तदेमि श्वभ्रमन्तिमम् ॥१९२॥
अन्योऽथाख्यद्विवेकोऽयं सारासारपुरस्सरः । अस्ति सर्वत्र सर्वेषां, न तु ते पश्यताद्भुतम् ॥१९३॥ उक्तं च–

"धर्मः पेयं भोज्यं भक्ष्यं न्याय्यं च कार्यमथ गम्यम् ।
सारं सौख्यं सप्रतिपक्षं सर्वत्र सर्वेषाम् ॥१२५॥"

सत्यं सर्वत्र सर्वेषामस्तीत्थं नात्र मे पुनः । वाच्यं नैतद्विधौ तेनेत्यन्यमा[3]ञ्यो न्यवारयत् ॥१९४॥
प्रधानः पार्थिवायेदं, सर्वं गत्वा ततोऽब्रवीत् । राजाऽथ प्राप यत्कार्यं, स्वेन स्यान्न परेण तत् ॥१९५॥
भूभुजाऽपि तथैवोक्ते, हसित्वाऽऽह स झाञ्झणः । स्वामिन्नेकाऽस्ति विज्ञप्तिर्यदि देवो न दूयते ॥१९६॥
नृपेणानुमतः सोऽवक्, कर्तव्य हि व्यये भयम् । रणादप्यधिकं तत्र[4], बिभ्यति त्वादृशोऽपि यत् ॥१९७॥

साधर्मिकान् भोजनाय निमन्त्रयति ।

---

१ दूरीकरणतः । २ भूपेनैवादौ ज्ञात्वा प्रवर्त्तितम् । ३ झाञ्झणः । ४ व्यये ।

श्रीझाञ्झण-कृताः श्वभ्रमत्याः तीरे परश्शताः भुक्ति-मण्डपाः ।

अपि क्षीयेत पाथोधिर्न तु क्षीयामहे वयम् । निधीत्युक्तोऽपि कुर्याद्वाऽधिकं चक्र्यापि नो व्ययम् ॥१९८॥
तस्माच्चेद्भोज्यते सर्वस्तद्वाच्यं देव ! नान्यथा । नृणामेषां समेषां तु, साम्याद्युक्ता न पङ्क्तिभिद् ॥१९९॥
शिरोभिरानर्च दशापि रुद्रानेकादशं तेषु तु नो दशास्यः ।
अतो हनूमानकरोद् विनाशं, भेदो हि पङ्क्तेर्न शिवं करोति ॥२००॥
श्रुत्वेतीषद्विषण्णेन, राज्ञोचे ब्रूत मन्त्रिणः । भोज्यतेऽनुगृहं सर्वैरेकैकस्तत्र का क्षतिः ॥२०१॥
युष्माकमाथियासामश्चेद् वयं जातु जेमितुम् । निमन्त्रयथ भोस्तत् किं, साकं सकलनीवृता ॥२०२॥
मन्त्र्याख्यदन्यत्र दोषः स्याद् विविच्यादनेन हि । सङ्घे त्वेवं कृते ते मेऽप्येकान्तात्पातकादयः ॥२०३॥
निमन्त्रणं तु देवस्य, कुर्वन्नस्मि सनीवृतः । इत्युक्त्वा प्रास्तृणोच्चीराश्चलं धीरो धनव्यये ॥२०४॥
भुक्त्वाऽप्यस्य करिष्यामि, परीक्षामिति काङ्क्षया । ततोऽनुमेने भूपालो, मन्त्रिणस्तन्निमन्त्रणम् ॥२०५॥
मासान्ते भोजनस्याह्नि, स्वयं राज्ञा च निश्चिते । तदुपर्यखिलां धन्यः, स सामग्रीमचीकरत् ॥२०६॥
श्वभ्रमत्याऽऽपगातीरे, पञ्चवर्णपटाश्चिताः । परश्शताश्च सश्रीकाः, कारिता भुक्तिमण्डपाः ॥२०७॥
मण्डपे मण्डपे पञ्चसहस्राणीति रीतितः । प्रतिज्ञातिविवेकेन, भक्त्या भोजयता सता ॥२०८॥
पञ्चलक्षा मनुष्याणां, राज्ञोपक्रममेलिताः । पञ्चषैर्वासरैस्तेन, भोजिताः सत्कृता अपि ॥२०९॥

२ सर्वेषाम् । २ सादृश्यात् ॥

शैलेयेषु शिलातलेषु च गिरेः श्रृङ्गेषु गर्तेषु वा, माकन्देषु बिभीतकेषु च तथा रिक्तेषु पूर्णेषु च ।
स्निग्धेन ध्वनिनाऽखिलेऽपि वसुधाचक्रे यथाऽब्दः समं, वर्षत्येवमसौ ससौरभयशाश्चक्रेऽत्र लीलायितम् ॥२१०॥
ततः सर्वेषु श्रृण्वत्सु, सान्तर्हासं महीपतेः । स चावादीत्किमेतावत्येव देवाऽस्ति गूर्जराः ॥२११॥
तावन्नृभोजनेऽप्यद्याप्यवशिष्टं च बह्वपि । पक्वान्नादि महीशस्य, दर्शयित्वाऽद्भुतं व्यधात् ॥२१२॥
चैत्येषु ढौकयामास, लम्भयामास सद्मसु । अद्धालूनां च पक्वान्नं, तद्यशो नु स्वमुज्ज्वलम् ॥२१३॥
एवंकारेण भूपादिभोजनादिविधानतः । सरूप्यटङ्कलक्षाणां, पञ्चानां विदधे व्ययम् ॥२१४॥

समग्रनृभोजनेऽप्यवशिष्टं पक्वान्नादि दृष्ट्वा राज्ञः महदाश्चर्यम्।

॥ इति झाञ्झणकृत-सारङ्गदेवराजभोजन-प्रबन्धः ॥



॥ अथ झाञ्झणतीर्थयात्रा-प्रबन्धः ॥



अथ विश्वचमत्कारकारकोऽद्भुतकर्मभिः । अग्रतः सङ्घयुग् मन्त्री, प्रतस्थे वसुवर्षणः ॥२१५॥

---

१ पर्वतसम्बन्धिषु ।

||१३५||

क्रमाच्चासादि सङ्घेन, सादितोद्दामकर्मणा । स्त्रैणभूषामणीभासाताम्रा ताम्रावती पुरी ॥२१६॥
वासं वासवसद्मनि व्यधित यः कालं कियन्तं पुनः, पुर्यां कंसरिपोरहीश्वरपुरेऽप्याराध्यमामोऽधिपैः ।
यो नागार्जुनसिद्धिहेतुरभयश्रीसूरिविश्राणितश्रेयोऽङ्गस्तमुपेत्य पार्श्वमसृजत् पूजां तदन्तर्जनः ॥२१७॥
ततो गोध्रादिमध्येन, सलक्षणपुरं गतः । प्रवेशस्य महः शस्यस्तत्रासीदतिरङ्गतः ॥२१८॥
दौस्थ्योद्दीप्तदवाग्नितप्तजनताझञ्झानिलो झाञ्झणः, सङ्घे द्व्यर्धमनुष्यलक्षसजुषि प्राप्तप्रभुत्वस्ततः ।
दुर्गं मण्डपमापदापदपदं भूपादिसंपादितस्थानस्थानमहामहादिविधिना यात्राविधायी सुधीः ॥२१९॥
मन्त्री मन्दिरमागमन्निजनिजस्थानेषु संप्रेषिताः, सर्वे सङ्घजनाः सतोरणतया रेजुः सतामालयाः ।
वध्वोऽप्यक्षतपात्रपाणय उपाजग्मुर्गृहे माधुरीभङ्गीमङ्गलगीतगानगणितस्वर्गाङ्गनागौरवाः ॥२२०॥
सर्वज्ञातिसभक्तिभोजनघनश्रीसङ्घपूजापरीवारोपेतधरापुन्दरपुटाद्युत्सर्जनाद्युत्सवम् ।
सौभाग्योपरिमञ्जरीतुलनया श्रीतीर्थयात्राऽनुगं, देवाह्वानकमाततान कनकाम्भोदायितः सोऽर्थिनाम् ॥२२१॥

॥ इति झाञ्झणतीर्थयात्राप्रबन्धः ॥



अष्टमः तरङ्गः ।

श्रीस्तंभनपार्श्वं जिनं वन्दित्वा क्रमशः मण्डपदुर्गेसमहः प्रवेशः ग्रन्थसमाप्तिश्च ।

---

१ विनाशित–। २ इन्द्रमन्दिरे । ३ अकृत । ४ अभयदेवसूरिदत्तनिरुकृशरीरः ॥

श्रीदेवेन्द्रमुनीन्द्रपट्टमुकुटः श्रीधर्मघोषो गुरुस्तत्पादाब्जपरागपावितशिखः पृथ्वीधरो धीसखः ।
तद्वंशाम्बरडम्बरद्युतिपतिः श्रीझाञ्झणश्चेत्यभूदुत्कृष्टा जगदङ्गणे त्रिपुरुषी मूर्तेव देवत्रयी ॥२२२॥
पूर्णः पार्वणसोमसुन्दरगुणस्यानन्दिरत्नत्रयीदीप्रश्रीगुरुधर्मघोषचरणद्वन्द्वारविन्दालिनः ।
प्रौढावन्तिचिरत्नमण्डनमणेः श्रीपेथडस्य श्रुतिस्वादिष्टः सुकृतादिसागर इति ख्यातः प्रबन्धोऽभवत् ॥२२३॥
दृब्धः श्रीगुरुनन्दिरत्नचरणाम्भोजालितां भेजुषा, विद्यामण्डितपण्डितप्रभुसुधानन्दैरदोषीकृतः ।
तन्द्रातीतविनीतनन्दिविजयप्रादुष्कृताद्यप्रतिर्ग्रन्थः सद्भिरयं मरुत्परिमलन्यायेन विस्तार्यताम् ॥२२४॥

****

॥ इति श्रीयुगोत्तमगुरुश्रीसोमसुन्दरसूरिपट्टालङ्कारश्रीरत्नशेखर-
सूरिविनेयपण्डितप्रकाण्डनन्दिरत्नगणिचरणरेणुरत्नमण्डनविरचिते
मण्डनाङ्के सुकृतसागरे श्रीपेथडसुतश्रीझाञ्झण-
प्रबन्धकथनो नामाऽष्टमस्तरङ्गः ॥ ग्रन्थाग्रम् १४९६॥

****



॥ परिशिष्टानि ॥

ग्रन्थान्तरसंदर्भाः ।

तत्र प्रथमं परिशिष्टम्

१. सहस्रावधानी विद्वदग्रेसर श्रीमुनिसुन्दरसूरिरचित गुर्वावलीग्रन्थगत सन्दर्भः— पृ० १७

अथान्यदा मालवमण्डलावनेर्विभूषणे मण्डपदुर्गनामनि ।
पुरे स पृथ्वीधरसाधुमार्हतं प्राबूबुधद् धर्ममुदारधीर्गुरुः ॥१७७॥
त्रिकालवेत्ता भगवान् स पञ्चमव्रतेऽपि लक्षा द्रविणस्य मुत्कलाः ।
अनाढ्यमप्येतमचीकरत् प्रभुः प्रपन्नसम्यक्त्वचतुस्त्रिकव्रतम् ॥१७८॥
स च क्रमाद् मालवमण्डलेशितुः प्रजाभिरर्च्य सचिवत्वमाश्रितः।
बभूव ऋद्ध्या धनदोपमो हि किं न ज्ञानिनां भाग्यवतां च गोचरे ॥१७९॥
भुवं स चैत्यै र्हृदयानि सद्गुणै र्मनीषिणां व्याप च कीर्तिभि र्दिशः ।
धनैश्च कोशान् प्रशशास च प्रभूनपि क्षमाया विदितोरुषड्गुणः ॥१८०॥

स षट्सहस्राधिकजीर्णटङ्कायुतत्रयस्याऽथ मुदा व्ययेन ।
श्रीधर्मघोषे स्वगुरौ समेतेऽन्यदा प्रवेशोत्सवमाततान ॥१८१॥

प्रसेदुषाऽसौ गुरुणाऽर्पितक्रमः क्रमाऽवबुद्धद्रविणव्ययास्पदः ।
अचीकरच्चैत्यचतुष्टयाधिकाशीतिं स्फुरच्छारदवारिदभ्रमाम् ॥१८२॥

अनुत्तरैस्तैः किल चिन्तनातिगैरुदारधीरैश्चरितैरसस्मरत् ।
चिराद् व्यतीतं हरिषेणचक्रिणं स संप्रतिं चापि कुमारभूपतिम् ॥१८३॥

मौक्तिकश्रीसमायुक्त-जिननायकमण्डिताः ।
हारा इव विहारास्ते भान्ति भूभामिनीहृदि ॥१८४॥

कोटाकोटिरिति प्रसिद्धमहिमा शान्तेश्च शत्रुञ्जये
श्रीपृथ्वीधरसंज्ञया सुरगिरौ श्रीमण्डपाऽद्रौ तथा ।
प्रासादा बहवः परेऽपि नगर-ग्रामादिषु प्रोन्नता
भ्राजन्ते भुवि तस्य मुक्तिवलभीनिःश्रेणीदण्डा इव ॥१८५॥

अत्र श्रीपृथ्वीधरसाधुकारितप्रासादस्थानसंख्यामूलनायकजिननामादि वाच्यम्, पूज्यगुरुश्रीसोमतिलकसूरिपादैः कृतं स्तोत्रमवतार्य पठनीयम्, तच्चेदम्—

श्रीपृथ्वीधरसाधुना सुविधिना दीनादिषूद्दानिना भक्तश्रीजयसिंहभूमिपतिना स्वौचित्यसत्यापिना ।
अर्हद्भक्तिपुषा गुरुक्रमजुषा मिथ्यामनोषामुषा सच्छीलादिपवित्रितात्मजनुषा प्रायःप्रणश्यद्रुषा ॥१८६॥
नैकाः पौषधशालिकाः सुविपुला निर्मापयित्रा सता मन्त्रस्तोत्रविदीर्णलिङ्गविवृतश्रीपार्श्वपूजायुजा ।
विद्युन्मालिसुपर्वनिर्मितलसद्देवाधिदेवाह्वयख्यातज्ञाततनूरुदप्रतिकृतिस्फुर्जत् सपर्यास्रजः ॥१८७॥
त्रिःकाले जिनराजपूजनविधिं नित्यं द्विरावश्यकं साधौ धार्मिकमात्रकेऽपि महतीं भक्तिं विरक्तिं भवे ।
तन्वानेन सुपर्वपौषधवता साधर्मिकाणां सदा वैयावृत्त्यविधायिना विदधता वात्सल्यमुच्चैर्मुदा ॥१८८॥
श्रीमत्संप्रतिपार्थिवस्य चरितं श्रीमत्कुमारक्षमापालस्याप्यथ वस्तुपालसचिवाधीशस्य पुण्याम्बुधेः ।
स्मारं स्मारमुदारसम्मदसुधासिन्धूर्मिषून्मज्जता श्रेयः काननसेचनस्फुरदुरुप्रावृड्भवाम्भोमुचा ॥१८९॥
सम्यङ्न्यायसमर्जितोर्जितधनैः सुस्थानसंस्थापितै र्ये ये यत्र गिरौ तथा पुरवरे ग्रामेऽथवा यत्र ये ।
प्रासादा नयनप्रसादजनका निर्मापिता शर्मदास्तेषु श्रीजिननायकानभिधया सार्द्धं स्तुवे श्रद्धया ॥१९०॥
(पञ्चभिः कुलकम्)

श्रीमद्विक्रमतस्त्रयोदशशतेष्वब्देष्वतीतेष्वथो विंशत्या (१३२०) ऽभ्यधिकेषु मण्डपगिरौ शत्रुञ्जयभ्रातरि ।
श्रीमानादिजिनः १ शिवाङ्गजजिनः (२) श्रीउज्जयन्तायिते
निम्बस्थूरनगेऽथ तत्तलभुवि श्रीपार्श्वनाथः ३ श्रिये ॥१९१॥

जीयादुज्जयिनीपुरे फणिशिराः ४ श्रीविक्रमाख्ये पुरे
श्रीमान्नेमिजिनो ५ जिनौ मुकुटिकापुर्या च पार्श्वादिमौ ६–७।
मल्लिः शल्यहरो हि विन्धनपुरे ८ पार्श्वस्तथाऽऽशापुरे ९
नाभेयो बत ! घोषकीपुरवरे १० शान्तिर्जिनोऽयापुरे ११ ॥१९२॥
श्रीधारानगरेऽथ वर्धनपुरे श्रीनेमिनाथः पृथक् १२, १३
श्रीनाभेयजिनोऽथ चन्द्रकपुरीस्थाने १४ स जीरापुरे १५।
श्रीपार्श्वो जलपद्र १६ दाहडपुरस्थानद्वये १७ संपदं
देयाद् वीरजिनश्च हंसलपुरे १८ मान्धातृमूलेऽजितः १९ ॥१९३॥
आदीशो धनमातृकाभिधपुरे २० श्रीमङ्गलाख्ये पुरे २१
तुर्यस्तीर्थकरोऽथ चिक्खलपुरे श्रीपार्श्वनाथः श्रिये २२।
श्रीवीरो जयसिंहसंज्ञितपुरे २३ नेमिस्तु सिंहानिके २४
श्रीवामेयजिनः सलक्षणपुरे २५ पार्श्वस्तथैन्द्रीपुरे २६ ॥१९४॥
शान्त्यै शान्तिजिनोऽस्तु ताल्हणपुरे २७ ऽरो हस्तनाद्ये पुरे २८
श्रीपार्श्वः करहेटके २९ नलपुरे ३० दुर्गे च नेमीश्वरः ३१।

श्रीवीरोऽथ विहारके ३२ स च पुनः श्रीलम्बकर्णीपुरे ३३
खण्डोहे किल कुन्थुनाथ ३४ ऋषभः श्रीचित्रकूटाचले ३५ ॥१९५॥

आद्यः पर्णविहारनामनि पुरे ३६ पार्श्वश्च चन्द्रानके ३७
वङ्क्यामादिजिनो ३८ ऽथ नीलकपुरे जीयाद् द्वितीयो जिनः ३९।

आद्यो नागपुरे ४० ऽथ मध्यकपुरे श्रीअश्वसेनात्मजः ४१
श्रीदर्भावतिकापुरेऽष्टमजिनो ४२ नागहृदे श्रीनमिः ४३ ॥१९६॥

श्रीमल्लि धवलक्कनामनगरे ४४ श्रीजीर्णदुर्गान्तरे ४५
श्रीसोमेश्वरपत्तने च फणभृल्लक्ष्मा ४६ जिनो नन्दतात्।

विंशः शङ्खपुरे जिनः ४७ स चरमः सौवर्तके ४८ वामन-
स्थल्यां नेमिजिनः ४९ शशिप्रभजिनो नासिक्यनाम्न्यां पुरि ५० ॥१९७॥

श्रीसोपारपुरे ५१ ऽथ रुणनगरे ५२ ऽथो रुङ्गले ऽथ प्रति-
ष्ठाने पार्श्वजिनः ५४ शिवात्मजजिनः श्रीसेतुबन्धे ५५ श्रिये।

श्रीवीरो वटपद्र-नागलपुरे ५६-५७ छक्कारिकायां ५८ तथा
श्रीजालन्धर-देवपालपुरयोः ५९-६० श्रीदेवपूर्वे गिरौ ६१ ॥१९८॥



चारूप्ये मृगलाञ्छनो जिनपति ६२ र्नेमिः श्रिये द्रोणते ६३
नेमी रत्नपुरे ६४ ऽजितोऽर्बुकपुरे ६५ मल्लिश्च कोरण्टके ६६ ।
पर्श्वो ढोरसमुद्रनीवृति ६७ सरस्वत्याह्वये पत्तने
कोटाकोटिजिनेन्द्रमण्डपयुतः ६८ शान्तिश्च शत्रुञ्जये ६९ ॥१९९॥
श्रीतारापुर-वर्द्धमानपुरयोः ७०-७१ श्रीनाभिभू-सुव्रतौ
नाभेयो वटपद्र-गोगपुरयो ७२-७३ श्चन्द्रप्रभः पिच्छने ७४ ।
ओङ्कारेऽद्भुततोरणं ७५ जिनगृहं मान्धातरि त्रिक्षणं ७६
नेमि र्विंकननाम्नि ७७ चेलकपुरे श्रीनाभिभू ७८ र्भूतये ॥२००॥
इत्थं पृथ्वीधरेण प्रतिगिरि-नगर-ग्रामसीमं जिनाना-
मुच्चैश्चैत्येषु विष्वग् हिमगिरिशिखरैः स्पर्धमानेषु यानि ।
बिम्बानि स्थापितानि क्षितियुवतिशिरः शेखराण्येष वन्दे
तान्यप्यन्यानि यानि त्रिदशनरवरैः कारिताऽकारितानि ॥२०१॥

इति पृथ्वीधरसाधुकारित-चैत्यस्तोत्रम् १६ ॥

काव्यं पूज्यश्रीसोमतिलकसूरिकृतम् ।

※ ※ ※

नभोगङ्गां रङ्गद् ध्वजसितपतत्रालिकलितां
स्रवच्चन्द्राश्माऽङ्घ्रिः स्फटिककलशेन्दुं च विशदः।
शिरः कोटौ बिभ्रद् मरकतमणीनीलितगलः
श्रयेत् तस्य ज्योत्स्नाहरविलसितं चैत्यनिकरः ॥२०२॥
किं वर्ण्यतेऽसौ मुहुरेकविंशतेर्व्ययाद् घटीनां कनकस्य यो मुदा।
अचीकरद्धैममाऽऽदिमप्रभोः शत्रुञ्जये सद्म सुमेरुशृङ्गवत् ॥२०३॥
उदारमाख्यान्त्वथवाऽमितंपचं तदङ्गजं झाञ्झणदेवमुत्तमाः।
शत्रुञ्जये रैवतकेऽप्यहो ! ददौ सुवर्ण-रूप्य ध्वजमेकमेव यः ॥२०४॥
केचिदाहुः सुवर्णस्य स षट्पञ्चाशतं घटीः।
व्ययित्वा लीलयाऽपीन्द्रमालां परिदधौ मुदा ॥२०५॥
दिशां त्रये कूर्मवराहशेषाः पृथ्वीं दधाना बहुकष्टभाजः।
तस्याश्चतुर्थ्यां दिशि धारकं तं पृथ्वीधरं प्राप्य मुदं दधुस्ते ॥२०६॥
कैवल्यदानप्रतिभूजिनोक्त-समग्रशास्त्राऽवलि लेखनेन।
अबीभरत् सप्त स सारकोशान् सरस्वतीकेलिगृहानिवोच्चैः ॥२०७॥

श्रीस्तम्भतीर्थे निवसन् प्रभावको वेषं स भीमः प्रजिघाय सङ्घराट् ।
पृथ्वीधरस्याप्युचितं समर्चयन् शीलप्रपत्तौ निखिलान् सधर्मकान् ॥२०८॥
युतः सुपत्न्या प्रथमिन्यभिख्यया तथैव साधर्मिकतां विभावयन् ।
द्वात्रिंशवर्षोऽपि भटो जितस्मरः प्रपद्य शीलं तमथो स पर्यधात् ॥२०९॥
प्रियाऽपि साऽस्य प्रथमिन्यभिख्या ख्याता सतीषु प्रथमात्तरेखा ।
कदाऽपि या क्वापि न पुण्यकृत्यैरहीयताऽस्माद् गुरुदेवभक्ता ॥२१०॥
नित्यं त्रिर्जिनपूजनं गुरुनतिः साधर्मिकाभ्यर्चनं
दीनाद्युध्धरणं सुशास्त्रपठनं पर्वस्वथो पौषधः ।
कृत्यानीति गुरूपदेशवशगः स द्विःप्रतिक्रान्तिकृत्
भूपालार्पितमालवाऽवनमहाचिन्तोऽप्यहो ! निर्ममे ॥२११॥
अनुत्तरोदारसमग्रसद्गुणः स षड्विधावश्यकतत्परः सदा ।
नृरत्नमर्हद्गुरुभक्तिभाग् मतप्रभावकोऽलङ्करणं भुवोऽभवत् ॥२१२॥



परिशिष्टम् ॥२॥

श्रीरत्नमन्दिर गणिकृत-उपदेशतरङ्गिणीगत सन्दर्भा :– [२]

लक्ष्मीः कृतार्था सफलं तपोऽपि ध्यानं सदोच्चै र्जिनबोधिलाभः ।
जिनस्य भक्ति र्जिनशासनश्री र्गुणाः स्युरुद्यापनतो नराणाम् ॥ दृष्टान्तो यथा–

पेथडदे साधुना ६८ स्वर्ण वर्तुलिका मुक्ताप्रवाल भृता, ६८ सर्वकल सर्वहाटकादि-
नाणक पुञ्जक ६८, सर्वजातिपक्वान्न सुखभक्षिका ६८, दुकूलचीरादि महाध्वजादि-
विस्तरसुभगं, श्रीनमस्कार फलोद्यापनं कृतं सकललोकविस्मयावहम् ।

एवमपरैरपि स्वसंपत्यनुमानतस्तप उद्यापनविधौ यतनीयम् ।

[२] द्वितीय तरङ्गे पृ–१२७

जिनालयसमीपवर्तित्वेन पौषधशालोपदेशानाह-

उपदेश तरङ्गिणीगत सन्दर्भः ।

पुण्याट्टं पौषधागारं तत्रैत्य ग्राहको जनः । व्रतादिपण्यं क्रीणाति क्रमेणाऽनन्तलाभदम् ॥१॥

धर्मश्रुति प्रतिक्रान्ति-यतिस्थिति पुरस्सराः । यास्तत्र स्युः क्रियास्तज्ज पुण्यपारो न विद्यते ॥२॥

कलिवुध्धिः कुरुक्षेत्रे यथा स्नेहवतामपि । तथा स्याद्धर्मशालायामधमस्यापि धर्मधीः ॥३॥ दृष्टान्तो यथा—

सं. पेथडदेजनकः कनकजलधरविरुदः सं. देदः कस्मैचित् कार्याय देवगिरिं पुरीं प्राप । तत्र गुरुन् नन्तुं क्वाप्युपाश्रये गतः । गुरवो वन्दिताः । तत्रैकस्थानोपविष्टान् पौषधशालानिर्मापणविचारं कुर्वतः श्राध्धानप्यवन्दत । तद्विचारमाकर्ण्य श्रीसङ्घस्याञ्जलयाचनां विदधे-मह्यं प्रसादः क्रियताम्-अहं पौषधशालिकां विधापयामि सङ्घस्य किङ्करोऽस्मि । तेषु मुख्यस्तदाचख्यौ यूयमजल्पत यौक्तिकमेव, परं सा सकलसङ्घनिष्पादिता स्याद् न त्वेकस्य । यस्तामेकः कारयति, स शय्यातरः स्मृतस्तद्गृहादन्नादिकं न लान्ति यतयः । बहूनां शालाकारापणे प्रतिदिन मेकैकं गृहं त्यजन्ति तथा च वरम् । इत्यादि युक्तिभिः सभ्यै बोधितोऽपि न त्यजति कदाग्रहं यदा सः तदा कोऽपि श्राध्धः क्रुद्धोऽवदत् भोः ! यद्यत्र कोऽपि कारयिता न स्यात् तदा कदाग्रहोभव्यः कारयितारोऽत्र बहवोऽपीष्टिकामयीं शालां, सौवर्णीं तु युष्माभिरपि सा न कारयिष्यते । श्रुत्वेदं सङ्घपादे लगित्वा सौवर्णीं कारयिष्यामीति वदन् स्वीचकार शालानिष्पादनम् । सङ्घेनानुमतिः प्रदत्ता । तथाविध द्रव्यं क्व ? महीभूजानुकूल्यं क्व ? श्रेयांसि बहुविध्नानि ।

उत्पद्यकलिकालान्तः कार्यं कृतयुगोचितम् । कुर्वाणस्यान्तरायो हि प्रायो बाधाय जायते ॥

इत्यादि युक्तिभि र्गुरुभिः प्रतिबोधितः। पुनरपि देदोऽवग् भगवन् ! किन्त्विष्टिकामयीं विधापयिष्यते हेमपत्रैश्च जटयिष्यते। जगुस्तं गुरवः-मुञ्च एनमाग्रहं कलौ तदपि बह्वपायाकुलम् । वारितो गुरुभिर्देदो भ्रातृजस्वर्णाभिधानेन तां कारयितुमारेभे। सुधामध्ये मणशत केसरं क्षिप्तम् । तेन पीतवर्णा समभूत् । परःसहस्राष्टङ्ककानां लग्नाः । तदनु कुङ्कुमलोलशालेति प्रसिद्धिं प्राप ।

उपदेश तरङ्गिणीगत सन्दर्भः ।

[३] द्वितीय तरङ्गे पृ.–१२०

स्वैर्द्रव्यैर्जिनमन्दिराणि रचयत्यभ्यर्चयत्यर्हतः स्त्रिर्भक्त्या यतिनां तनोत्युपचयं वस्त्रान्नपात्रादिभिः ।
धत्ते पुस्तकलेखनोद्यममुपष्टम्नाति साधर्मिकान् दीनाभ्युद्धरणं करोति कलयत्येवं सुपुण्यार्जनम् ॥

इत्यादि तपा. श्रीधर्मघोषसूरि दत्तोपदेशवासितचेतसा सं. पेथडदेवेन सं. झाञ्झणदेवेन च सं. १३२१ वर्षे मण्डपदुर्ग-करहेटक-जीरापली-श्रीशत्रुञ्जयादिषु ८४ प्रासादाः काञ्चनकलशाञ्चिताः कारिताः। मण्डपे शतत्रय प्रासादे सौवर्णकलशाः कारिताः। तेनैव देवगिरौ ब्राह्मणैरदीयमान जिनप्रासादकरणार्थं तद्देशासन्न ओङ्कारपुरे तत्रत्य '२६' कोटि निष्कधनिकरामदेवनृपमहामात्य प्रधानहेमादि नाम्ना बहवः सत्रागाराः बहुपक्वान्न-शालि-दालि-घृत-घोलक करम्भादि स्वादिमादि भोज्य संभार भासुरा मण्डापिताः। तेषु च कटो-कार्पटिक-पथिकाः सोत्कण्ठं भोजनं कृत्वा देवगिरिगमनादनु-कलिकालविक्रमादित्य-शालि-सुगाल-

उपदेश तरङ्गिणीगत सन्दर्भः।

लघुभोज राज-शातवाहन-वस्तुपालोपमानं दत्वा प्रतिगृहं प्रतिहट्टं हेमादेर्गुणप्रशंसनं कुर्वन्तिस्म। प्रधानेन चिन्तितम् मया तु निजपातिकमपि कस्याप्यर्पितं नास्ति। परं दानानुसारिणी कीर्तिः, दानं तु कदापि दत्तं नास्ति परमेतावान् लोको यदि मम सत्रागारं वहमानमाह-तर्हि केनापि कारणेन नूनं कोऽपि महापुरुषो मन्नाम्ना वाहयन्नस्ति, तदनु तज्ज्ञानाय प्रहितै जैनैरागत्योक्तम्-मालवीय-सं. पेथडदे नामा मन्त्री युष्मदभिधया वाहयति सत्रागारम्-यतः-

परकीय द्रव्येण, प्रचुरतरा रक्षयन्ति नाम निजम्। स्वद्रव्येण परेषां नाम पुनः पञ्चषाः पुरुपाः॥

इति विचिन्त्य हृष्टहृदयो हेमादिप्रधानस्तत्रागत्याऽवेत्य समग्रं वृत्तान्तं रामदेव नृपवचनेन चतुष्पथान्तः स्थानमभिलषितं पेथडस्य ददौ।

तदनन्तरं तेन नीरं खन्यमानेषु पादेषु निर्जगाम। मधुरिमाऽधारतिक्षीरं नीरं पीतञ्च तदा तकै लोकैः॥

न चैतावता कौतुकम्, पुण्यभाजां हि सर्वत्र निधानान्यपि निर्गच्छन्ति मिष्टपानीयस्य किमुच्यते!।

पदे पदे निधानानि योजने रसकूपिका। भाग्यहीना न पश्यन्ति बहुरत्ना वसुंधरा॥

तदा देवगिरिमध्ये मिष्टोदकाऽभावात् केनापि पिशुनशुना भाषितं भूपतेः पुरः स्वामिन्निह मधुरममम्भः प्रादुरभूत्। तेन प्रासादास्पदमन्यत्राप्यर्पतामिह वापी कार्यताम्। तदा राज्ञोक्तम्-प्रातरहं तत्रागत्य विलोक्य च कथयिष्यामि। सन्ध्यायां वृत्तान्तमेतद् ज्ञात्वा रात्रावेव तद् दिनागतबहिःस्थ

उपदेश तरङ्गिणीगत सन्दर्भः ।

बालदिमध्यात् कियल्लवणमानाय्य रहोवृत्त्या क्षिप्तं चान्तः, क्षारतरमकारयन्नीरम् प्रभाते भूपतिरभ्युपेत्य जलं स्वादितवान् निष्ठचूतवांश्च क्षारतया । ततो राजाऽऽदेशात् तत्कालं पादानारोपयत् पेथडः । कियता कालेन च निष्पन्नः शिखरान्तः स्वर्णकलशदण्ड-ध्वज-कान्तः प्रासादो रुद्रमहालयतः स्थिरद्वयेन न्यूनः । सं. १३३५ वर्षे 'सारु आरे'ति प्रसिद्धघाटमयः । यत्र घाटेऽपरे सामान्याश्चतुरशीति प्रासादा निष्पद्यन्ते । ततस्तत्कर्मस्थाय चिन्ताकारिभि र्वणिक्पुत्रैः सर्वव्ययस्य लेख्यमादातुमारब्धम् । तत्र पूर्वमल्पमूल्यानां दवरकाणामेव चतुरशीति सहस्रसङ्ख्या जीर्णटङ्कास्तैरुक्तास्तदा पेथडेन तदनुमानेनापरबहुद्रव्यव्ययं विचार्य लेख्यवाहिका नीरे क्षिप्ता । ततोलोके रमूल्योऽयं विहारः पेथडेनापि प्रतिष्ठावसरे सर्वजनसमक्षं श्री गुरुपार्श्वादमूलिक विहारेति प्रतिष्ठापितम् । तदन्तश्च त्र्यशीति अङ्गुलप्रमाणमारासणीयं श्री महावीरबिम्बमष्ठिपत् ।

[४] द्वितीय तरङ्गे पृ.–१३९

धर्मे यत्नः शुभा-बुद्धिः सारासारत्वनिर्णयः । हेयोपादेयविज्ञानं संवेगोपशमौ श्रुते ॥

इतिश्रीधर्मघोषसूरिप्रदत्तोपदेशवासितचेतसा सं. पेथडदेवेन एकादशाङ्गी श्रीधर्मघोषसूरिमुखात् श्रोतु मारब्धा । तत्र पञ्चमाङ्गमध्ये यत्र यत्र गोयमा इत्यायाति तत्र तत्र तन्नानरामणीयक प्रमुदितः- सौवर्णटङ्कैः पुरतकं पूजयति–

[५] तृतीय तरङ्गे पृ.-१८९

जलाहारौपधस्वाप विद्योत्सर्ग कृतिक्रियाः। सत्फलाः स्वस्वकालेस्यु रेवं पूजा जिनेश्वरे ॥
सा चैकाग्रमनसा कार्या- पेथडदे सङ्घाधिपतिवत्। यथा पेथडदेवस्त्रिकालं देवपूजा करोति स्म। एकदा देवपूजावसरे जयसिंहनृपेण पञ्चपवारमन्यान्यपार्श्वादाकारितोऽपि यदा नागतस्तदा नरेन्द्र एव सदनमागत्य दूरतः पेथडं पृथुडम्बरदेवपूजापरं वीक्ष्य पश्चाद्देशासीनं नानाप्रसूनार्पकं जनमुत्थाप्य प्रच्छन्नमुपविश्य च स्वयं पुष्पाणि पाणिपद्मैरर्पयितुं लग्नः। परं कुसुमार्पणविधिमजानन्नन्यान्यपर्यत्। तदा पेथडः पश्चादालोकयन्नृपं दृष्ट्वा यावदभ्युत्तिष्ठति तावत्करे धृत्वा नृपस्तमुपवेश्य देवपूजैकाग्रतारं जितचेता उवाच- यदि मदीये गृहे महदपि कार्य स्यात् तदा त्वया पूजाक्षणे नागन्तव्यम्। इत्युक्त्वा स्वस्थानं प्राप्तः। एवमेकाग्रचेतसा त्रिकालदेवपूजोपक्रमः कार्यः।

॥ इतिजिनार्चोपदेशः-१८ ॥



उपदेश तरङ्गिणीगत सन्दर्भः।

परिशिष्टम् ॥३॥

श्रीकुलसारगणिविरचित उपदेशसारान्तर्गत सन्दर्भः—

तथा लक्ष्मीवृद्धि र्धर्मात्-अत्रपेथडदृष्टान्तः—

प्रथम विद्यापुरे वणिक्सामान्यः, श्रीधर्मधोषसूरिपार्श्वे परिग्रहपरिमाणग्रहणपरो जातः, द्रम्मपञ्चशतीमुत्कलीकरणोन्मुखस्य तस्य गुरुभिः पञ्चलक्षाः मुत्कलाः कारापिताः । स चैकदा दुष्काले मालवके गतः, मण्डपदुर्गोपरि गच्छन् प्रतोलीवामपार्श्वे सर्पशिरःस्थदुर्गया स किञ्चिद् विलम्बितः, तदा तत्रस्थितेन केनचित् मारवेण महाशकुनोऽयमित्युत्साहितः प्रथमलवणमात्रविक्रेता, पश्चात् क्रमेण स सारङ्गदेवराज्ञो मन्त्री जातः, तस्य प्रथमादे भार्यायां झांझणदेवाख्यः सुनो जातः। झांझणदेवस्य वीवाहे तेन राजा सारङ्गदेवः ससैन्यो नर्मदातटे भोजितः, कर्पूरार्पणे करद्वये मुद्रापितः। ततो वीवाहानन्तरं तेन सा वधू भूपाय दर्शिता, राज्ञापि सा स्वोत्सङ्गे धृता। तथा निज १ लक्ष ९२ सहस्रग्रामयुक्ते मालवदेशे

प्रतिग्रामं सुवर्णगद्याणकदानं कञ्चुलिकास्थाने तस्यै दत्तम्। ततस्तस्य पेथडस्य प्रतिवर्षं ९४६ मणप्रमाणं स्वर्णं मिलति। परं तेन तत् सर्वं धर्मस्थाने व्ययितम्। द्विपञ्चाशद् देवकुलिकायुक् कोटाकोटि नाम प्रासाद प्रमुखा ८४ प्रासादाः कारिताः भृगुकच्छादिषु सप्तज्ञानकोशा लिखापिताः।

श्री शत्रुञ्जये २१ सुवर्ण घटिकाव्ययेन प्रासादः सुवर्णखोलिमढितः कारितः। अष्टादशभार सुवर्णव्ययेन सौवर्णदण्ड कलशालङ्कृतः कृतः। मण्डपे श्री जैन प्रासादशतत्रयोपरि सौवर्णमया दण्ड-कलशाः कारिताः। परिग्रहपरिमाणदातृ श्री धर्मघोषसूरीणां प्रवेशोत्सवे ७२ सहस्रटङ्कका व्ययिताः। श्री गिरिनार महातीर्थे समकालमेव श्वेताम्बर-दिगम्बराणां परस्परं तीर्थवादो जातः। वृद्धचतुरजनैरुक्तं-सङ्घपतिद्वयस्यापि मध्ये य इन्द्रमालां परिधास्यति तस्य तीर्थमिदम्। ततः पेथडसङ्घपतिना षट्पञ्चाशत् घटीप्रमाण-सुवर्णदानेनेन्द्रमाला परिधापनं कृतं। तीर्थञ्च स्वकीयं कृतमिति। तेन द्वात्रिंशत्तम वर्षे ब्रह्मव्रतोच्चारश्चक्रे। प्रतिक्रान्ति गव्यूतिद्वयमध्ये साधुपार्श्वे एव पाक्षिकं तु चतुर्योजन मध्ये एवंसाहश्रीपेथडेन निजलक्ष्मीः सफलीकृता।



उपदेश सार गत सन्दर्भः।

परिशिष्टम् ॥५॥

राज्यवात्सल्य



(अही परमार्हत श्रीझाञ्झणकुमारनो आदर्श प्रसंग रोचकशैली मां निरुपायो छे लेखक : सुबोधचन्द्र नानालाल शाह संपा.)

श्रेष्ठी पेथडकुमारः मांडवगढना महामंत्री. अेमणे जेम मांडवगढना राजा जयसिंहदेवना राज्यनुं महामंत्रीपद शोभाव्युं एम धर्मनुं महामंत्रीपद पण करी जाण्युं हतुं. एमना वखतमां मांडवगढनुं आखुं राज्य सुरक्षित थयुं, राज्यनी संपत्ति अने सुखाकारीमां वधारो थयो, अने आखा देशनी प्रजा सुखी अने समृद्धिशाळी बनी. बहारनां आक्रमणोनो अेमणे अेवो जवाब आप्यो के पछी तो कोई मांडवगढ राज्य सामे आंगळी चिंधवानी पण हिंमत न करी शके.

महामंत्री जेम राज्यसंचालनमां कुशळ हता तेम वेपारमां पण अेवा ज कुशळ हता. संपत्तिनी तो अेमने आंगणे छोळो उछळती हती. अने पेथडकुमारे तो पहेलेथी ज परिग्रहनुं

झाञ्झण कुमारनो एक रोचक प्रसंग।

परिमाण करेलुं, अेटले तेओ पोतानी संपत्तिनो धर्मनां अने लोकसेवानां कार्यमां खोबे खोबे उपयोग करता. अेमनी संपत्तिमांथी तो कंइक मनोहर देवमंदिरो. धर्मस्थानो, आश्रयस्थानो अने सेवालयो उभां थयां हतां. अे बधां स्थानो पेथडशानी कीर्तिगाथा संभाळावतां हतां. लोकोने थतुं, पेथडशाअे केटली संपत्तिनी कमाणी करी छे अने केटली संपत्तिनुं पोताना हाथे दान कर्युं छे। लोकोमां तो कहेवातुं के पेथडशाने चित्रावली मळी छे अने फळी छे.
पेथडशाना मार्गदर्शक हता अेक धर्मगुरु : आचार्य धर्मघोषसूरि अेमनुं नाम भारे प्रभावशाळी अने ज्ञानी पुरुष, आवा मोटा राज्यनो आवो मोटो मंत्री अेक नाना आज्ञांकित शिष्यनी जेम अेमनो पडयो बोल झीली लेतो : पोतानो गुरुनी कल्याणबुद्धिमां अेमने अेटली बधी आस्था हती.

आम राज्यसेवा, लोकसेवा अने धर्मसेवाने लीधे महामंत्री पेथडकुमार राज्यमां अने प्रजामां समान रीते प्रिय बनी गया हता. राजा अने प्रजा बन्नेमां अेमनी खूब प्रतिष्ठा हती अने सौ अेमनी वातने होंशेहोंशे स्वीकारी लेता, अने पेथडकुमारनो जयजयकार बोलावता.

सूर्य अस्त थाय छे अने हसतुं, खीलतुं, सुवास पाथरतुं सुंदर-सोहामणुं कमळ पोतानी पांखडीओ संकेली ले छे. जीवननुं पण अेवुं ज छे. आयुष्यनो सूर्य अस्ताचळ तरफ ढळे अने जीवननुं कमळ बिडाई जाय...बीजे स्थाने खीलवाने माटे। समय थयो अने सर्वजनवत्सल पेथडकुमारनुं जीवन

संकेलाइ गयुं. अेमनी काया अेमनी नामनानी सुवासने सर्वत्र प्रसरावीने नामशेष बनी गई-पेथडकुमार लोकहृदयमां अमर बनी गया. जनसमूह अेमनी पुण्यस्मृतिने अभिवंदी रह्यो.

पेथडकुमारनो पुत्र झांझणकुमार : अे पिता जेवो ज धर्मशूर, धर्मशूर अने दानशूर हतो. धर्मनुं रहस्य, संसारनी असारता अने संबंधोनी अशाश्वतताने अे सारी रीते समजे छे, पण पितानो वियोग अेनाथी सह्यो जतो नथी. अे तो वारेवारे पोताना पिताने संभारीने उदास बनी जाय छे. अेने थाय छेः पिताजी केवा जाजरमान पुरुष हता ! हवे शुं अेमनी छत्रछाया क्यारेय नहीं मळे ? अने झांझणकुमारनी आंखो अंतरनी वेदनानां आंसु सारवा लागे छे.

राज्य वासत्सल्य ।

गुरुदेव धर्मघोषसूरिजी अवारनवार झांझणकुमारने धर्मवाणी संभळावीने आश्वासन आपे छे अने आवा धर्मशूर पितानुं स्मरण करीने आर्तध्यानमां मनने दुःखी करवाने बदले अेमना जेवी धर्मकरणीमां चित्तने परोवीने पोताना जीवनने अने धनने कृतार्थ करवानी प्रेरणा आपता रहे छे. महामंत्रीनी जेम झांझणकुमारने पण आ धर्मनायक गुरुमहाराजनो ज साचो आश्रय छे.

छतां झांझणकुमारनुं मन हजी शांत अने स्वस्थ नथी थतुं, अे जोईने धर्मघोषसूरिजी महाराजे अेमने तीर्थयात्रानो संघ काढवानो उपदेश आप्यो अने तीर्थयात्राना तथा संघ काढवाना असंख्य लाभो वर्णवी बताव्या. पितानुं आप्युं अने पोताना हाथे रळेलुं धन पण अढळक हतुं, सारा काममां

सामे चालीने उल्लासपूर्वक धनने वापरवानी उदारता पण घणी हती अने धर्मनुं आराधन करवानी तथा शासननी प्रभावना वधारवानी धगश पण पुष्कळ हती.

झांञ्झणकुमारना मनमां आचार्य महाराजनी वात वसी गई. अेमने पण थयुं : बीजी दृष्टि उपरांत लोकद्रष्टिअे पण आवा महान अने धर्मात्मा पितानी स्मृति निमित्ते कंइक पण धर्मकृत्य करवुं ज जोइअे ने । संघ सहित तीर्थयात्रा करवामां तो पिताजीने पण साची अंजलि आपी गणाशे, संघने पण धर्मकरणी करवानो अवसर मळशे अने मारु पण कल्याण थशे. आवा अनेक लाभोनो विचार करीने झांझणकुमारे गुरुमहाराजना आ धर्मोपदेशने तरत ज आदरपूर्वक माथे चडावी लीधो, अने शत्रुंजय महातीर्थनी यात्राअे मोटा संघ साथे जवानुं नक्की कर्यु.

सारा काममां सो विघन, अेटले सारु काम तो तरत ज पताव्युं सारुं. अेटले मोटा संघनी तावडतोब बधी तैयारीओ करवानो झांझणकुमारे आदेश आप्यो. गामोगामना संघोने कंकोतरीओ लखवामां आवी. अने वि.सं. १३४० ना वसंतपंचमीना मंगळमय दिवसे, मंगळ चोघडिये अढीलाख जेटला यात्रिकोना मोटा संघ साथे झाझणकुमारे, आचार्य महाराज श्री धर्मघोषसूरिजीनी निश्रामां शत्रुंजय महातीर्थनी यात्रा माटे मंगल प्रयाण कर्यु.

अढी लाख मनुष्योनो अे संघ ज्यारे पोताना डेरातंबू उपाडीन चालतो त्यारे जे दृश्य सर्जातुं ते

एवु हतुं के जे नजरे जोवुं ए पण एक लहावो हतो.

संघ पण केवो मोटो ! ज्यां संघनो पडाव थाय छे त्यां अेक विशाळ नगर वसी जाय छे. संघनी सगवड साचववा अने भवित करवा झांझणकुमार, एमना साथीओ अने सेंकडो श्रेष्ठीओ उभे पगे खडा रहे छे. अनंतज्ञानी सर्वज्ञभगवाने संघने तीर्थ कहीने अने अेने नमस्कार करीने एनो महिमा वधार्यो छे. आवां जंगम तीर्थनी भक्ति करवानो आवो अपूर्व अवसर फरी मल्यो के मळशे ! संघना मार्गमां आवतां राज्योना राजाओ, ठाकोरो मंत्रीओ, महाजनो अने श्रेष्ठीओ पण संघनुं स्वागत बहुमान अने संघनी भक्ति करवामां जरा पण पाछी पानी करता नथी. सौ होंशे होंशे सेवा करवा दोडी आवे छे. सौने मन जीवननो आ अेक अमूल्य लहावो छे.

राज्य वात्सल्य ।

यात्राळुओ नित्यनियम मुजब देवदर्शन पूजन करी शके ए माटे बावन बावन तो विशाल जिनालयो साथे राखवामां आव्यां हतां. हजारो वाहनो, घोडा, बळदो अने सुखासनो वगेरेथी तेनी विराटता वधु ने वधु लंबाती जती हती.

मान्यामां न आवे तेवुं अे दृश्य हतुं. लोको कहेता के आवडो मोटो संघ ते वळी होतो हशे ? ते खातो क्यां हशे ? आटला मोटा समूहने खवडावतुं कोण हशे ? एने सुवा-बेसवानी सगवड शी हशे ? पण आ बधा सवालो त्यां सुधी ज टकता के ज्यां सुधी संघना प्रत्यक्ष दर्शन करवानो अवसर

न मळतो. ज्यां ए दृश्य प्रत्यक्ष जोवा मळतुं त्यां आ बधा प्रश्नो स्वयमेव शान्त थई जता.

संघना एक छेडेथी बीजे छेडे पहोंचवा माटे पगे चालनारने खासा -३-४ कलाक थाय एवो विराट आ संघ हतो. आ संघ गुजरातमां थई सौराष्ट्र देशमां जवानो हतो. अने त्यां जेना अणुए अणुए पापीओने य पावन करी देवानी शक्ति धरावे छे तेवा परम तारक तीर्थाधिराजना मस्तक पर विराजमान मुकुटमणि शा भगवान युगादीश्वरने मनभरी नीरखवानी अने ते तारकनी पूजा अर्चा करवानी भावना सेवतो हतो.

राज्य वात्सल्य ।

संघनी अने झांझणकुमारनी भावना सफळ थई : मार्गमां आवतां बधां धर्मतीर्थोनां अने छेवटे तीर्थाधिराज शत्रुंजय महागिरिराजनी उल्लासपूर्वक यात्रा करीने, अने झांझणकुमारने संघपतिपदनो अभिषेक करीने संघ पाछो फरी रह्यो हतो. पाछां फरतां पण संघमां ए ज धर्मरंग प्रवर्ततो हतो. जाणे त्यां धर्मनुं ज साम्राज्य प्रवर्ततुं हतुं., अने बधा यात्रिको ए धर्मनगरीना वसनारा हता.

पाछा फरतां मार्गमां गुजरातनुं जूनुं पाटनगर कर्णावती आवतुं हतुं. कर्णावती ते वखते पंकायेल नगरी हती, अने पुराणप्रसिद्ध साबरमती नदीने किनारे वसी हती. त्यारे त्यां राजा सारंगदेवनुं शासन प्रवर्ततुं हतुं. गुजरातनुं राज्यशासन नबळुं पडयुं हतुं. छतां गुजरातनो राजा त्यारे ए ज गणातो.

राज्य वात्सल्य ।

जेणे जेणे आवडा मोटा संघनी वात सांभळी हती ते बधा ज ताजूब थया, तोपछी गुर्जरेश्वर कंइ जुदी माटीना थोडा ज हता ते पण ताजूब थया. एमने य थयुं के केवी नवाईनी वात छे के अढी लाख माणसोनो आ संघ छे !

"आटली मोटी जनमेदनीनो अधिनायक कोण हशे भला ? सारंगदेवे पोताना प्रधानने पूछ्युं. ?

"महाराज ! आवा विशाळ संघना संघपति झांझणकुमार छे. मालव देशना मांडवगढ राज्यना महामंत्रीश्वर स्वनामधन्य पेथडकुमारना तेओ धर्मी पुत्र छे. पेथडकुमार तो एवां धर्मात्मा हता के एमणे बत्रीस वर्षनी भरयुवानीमां ब्रह्मचर्यव्रत जेवुं कठोर व्रत अंगीकार कर्युं हतुं ! तेमणे ओढेलुं वस्त्र रोगीने पहेरातां रोग चाल्यो जाय एवी तो एमनी धार्मिकतानी नामना हती. तेओ खरेखरा धार्मिक शिरोमणि अने पुण्यवान महापुरुष हता. आजना संघना संघपति झांझणकुमार एमना पुत्र छे अने तेओ पण खूब धर्मी छे."

गुर्जरेश्वर आ प्रशंसा विस्फारित नयने सांभळी ज रह्या. तेमने थयुं के आ संघने तो नजरे नीरखवो ज जोइए. अने संघनां दर्शन अने स्वागतनी एमनी भावना वधु प्रबळ बनी. संघना आगमनना समाचार आव्या एटले राजा अने प्रजा बधां खूब राजी थयां. सर्वत्र आवा मोटा अभूतपूर्व संघनां स्वागतनो उमंग प्रवर्ती रह्यो.

राजा सारंगदेवे पोताना मंत्रीश्वरने बोलावी संघपति तथा संघनुं योग्य सन्मान करवानी, नगरमां तेमनो प्रवेश-महोत्सव करावववानी तथा राजमहेलमां तेमने लई आववानी आज्ञा करी.

राज्य वात्सल्य।

बीजा दिवसे ज्यारे अेक प्रहर लगभग वीती गयो त्यारे संघ कर्णावतीना पादरे आवी पहोंच्यो. नगरनां तथा आसपासनां जिनचैत्यो जुहारवा तथा श्रमण भगवंतोने वंदना करवा माटे संघ अहीं चार दिवस रोकावानो हतो.

नमती संध्याअे गुर्जरेश्वर सारंगदेव संघपतिना तंबूमां आव्या. संघपतिनी बेठक अेक राजराजेश्वर जेवी हती. अद्भुत अने तेजस्वी अेमनुं ललाट हतुं. बहुमूल्य अने भाग्ये ज जोवा मळे अवा अलंकारोथी तेओ सुशोभित हता. अतिशय नाजुक देहलतावाळी अने आरसमांथी कंडारेली देवांगनाओ समी चामरधारिणीओ तेमने चामर वींझी रही हती. छत्रधर जराय हाल्याचाल्या विना छत्र धरीने उभो हतो. श्रेष्ठीओ अने सामंतो तेमना बंने पडखे दबदबापूर्वक बिराजता हता.

गुर्जरेश्वर पोताने मळवा आवी रहया छे अे समाचार सांभळतां ज संघपति झांझणकुमार पोते उठीने गुर्जरेश्वरनुं सन्मान करवा सामे गया. बंनेअे परस्परनुं अभिवादन कर्युं. राजवीए संघपतिना तथा संघना कुशळ मंगल पूछया. "अमारा प्रदेशमां आपने कशी तकलीफ तो नथी पडी ने ?" ए प्रश्नना जवाबमां संघपतिए गुर्जरेश्वरनी प्रसन्ननजरने कारणभूत गणावी.

राज्य वात्सल्य।

मीठी प्रेमभरी वातो शरु थई अने सौ आनंदविभोर बनी गया.

छेवट उठतां उठतां राजवीओ आवतीकाले राज्य तरफथी संघपति तथा संघना नगरप्रवेश महोत्सवनी वात मूकी, अने झांझणकुमारे एनो सहर्ष स्वीकार कर्यो.

बीजा दिवसनी सवार थई अने आखुं पाटनगर संघ अने संघपतिना सन्मानार्थे नगर बहार ठलवायुं. अढी लाख यात्राळुओ, बीजो पण मानवसमूह अने नगरनी समस्त वसती भेगी थतां त्यां मानवोनो हालतोचालतो महेरामण हिलोळा लेतो देखातो हतो, तेनुं वर्णन करवुं शक्य नथी.

संघपति झांझणकुमारने नाना पर्वत समा महाकाय हाथी पर सोनानी अंबाडीमां बेसाडवामां आव्या अने गुर्जरेश्वरे तेमनी साथे बेठा. एक विजेता सेनापतिनुं जेवुं सन्मान थाय तेथीय अधिक सन्मान तेमनुं करवामां आव्युं संघ अने संघापतिनी सवारी राजमहालय आवी पहोंचतां गुर्जरेश्वर संघपतिनो हाथ झालीने तेमने राजमहालय तरफ दोरी गया. सौनो परिचयविधि थयो अने ताम्बूलो अपायां.

छेवटे राजवीए विनंती करीः "श्रेष्ठी झांझणकुमार, जो तमे स्वीकारो तो मारी एक विनंती छे के आवतीकाले आप आपना संघमांथी सारा सारा चूंटी काढेला पांचेक हजार माणसो साथे राजमहालयमां मारे आंगणे भोजन लेवा पधारो."

राज्य
वात्सल्य।

सौने थयुं के हमणां झांझणकुमार हा पाडी देशे. एक राजा जेवो राजा वगर माग्ये, सामे चालीने आवुं दुर्लभ बहुमान करतो होय, तो एनो इन्कार पण कोण करी शके? अने एवो इन्कार करवानी जरुर पण शी ?

पण झांझणकुमार कंइ सामान्य माटीना मानवी न हता. एमना तो रोम रोममां धर्मनुं तेज अने बळ वसेलु हतुं. पोताना सन्मान अने गौरव करतांय पोताना धर्मनुं अने पोताना साधर्मिकोनुं गौरव अने सन्मान एमना हैये वधारे वसेलुं हतुं. झांझणकुमारे नम्रता अने विवेकपूर्वक छतां मक्कमपणे कह्युं "राजन ! आपनुं आमंत्रण हुं नहीं स्वीकारी शकुं, मने क्षमा करो !"

"कारण ?" राजवीए पूछ्युं.

"कारण ए के मारा संघमां जेमने हुं बीजा यात्रिकोथी सारा तरीके चूंटीने जुदा तारवी शकुं एवा कोई माणसोज नथी."

"एटले शुं तमारा संघमां सारा कही शकाय एवा माणसो ज नथी ? राजवीए संघपतिनी वातने समज्या वगर ज पूछ्युं. पोतानी मागणीनो इन्कार सांभळीने एना अंतरने ऐक प्रकारनो आघात लाग्यो हतो.

राज्य वात्सल्य ।

"ना, महाराज, एवुं नथी. आप मारी वात बराबर समज्या नहीं. में आपने कह्युं एनो भाव तो ए छे के मारा संघमां कोई पण खराब माणस नथी· बधा ज सारा छे. एमां हुं कोनी खराब तरीके बादबाकी करीने सारानी पसंदगी करुं! माराथी ए न थई शके आ संघमां बधा ज मारा सहधर्मी भाईओ छे. अने सौ मारा आमंत्रणथी ज संघमां पधार्या छे. तो पछी एमां साराखोटानो वरोवंचो करीने एमनुं मानभंग करनार हुं कोण !"

"तो पछी शुं थाय ?" राजवी जरा अकळाइने बोल्या.

"ए ज के आपनुं आमंत्रण हुं न स्वीकारुं !" झांझणकुमारे कह्युं.

राजवीने आ वातथी खेद थयो. ए खेदे गुस्सानुं रुप धर्युं· सहज आवेशमां आवीने राजवी बोल्या : "तो शुं तमारा अढी लाख माणसोना संघने मारे जमाडवो ? शुं कोई पण माणस आटली मोटी संख्याने जमाडी शके खरो ?"

" राजन ! आपनी भावनाने हुं समजी शकुं छुं. आपनी लागणी साची अने अनुमोदना करवा जेवी छे. कृपा करी आपे पण मारी वात सहानुभूतिथी समजवी घटे. वळी में आपनी पासेथी एवी कोई आशा राखी ज नथी के मारा संघना अढी लाख माणसोने जमाडो । बाकी आवडा मोटा संघने केवी रीते जमाडी शकाय एनो मारो नम्र तथा प्रत्यक्ष जवाब ए छे के हुं आ संघने रोज जमाडुं

राज्य वात्सल्य ।

ज छुं. पण आ कंई आग्रहने वश बनीने खेंच पकड करवा जेवी वात नथी. मोटी वात तो भावनानी छे, अने आपनी भावना में प्रत्यक्ष जोई छे, अने अेनुं मारे मन जमण करतां पण वधु मूल्य छे." पेथडशाअे गंभीरपणे कह्युं.

पोताना आमन्त्रणनी आ स्थिति थवाथि गुर्जरेश्वर गुस्सामिश्रित खेद ना भावोथी व्याप्त बनेला हता. त्यां अेमना मगजमां अेक चमकारो थयो अने अेमनाथी बोलाई गयुं: "संघपतिजी, शुं हुं तमने आखुं गुजरात जमाडवानुं कहुं तो तमे जमाडी शको खरा? जो ना, तो पछी तेवुं ज मारा माटे छे, अे तमारे समजवुं जोइअे अने मारा आमन्त्रणोनो स्वीकार करवो ज जोइअे."

सारंगदेव राजानी वात सांभळी मंत्रीश्वरे पूरी धीरताथी कह्युं: "राजन! अगर जो आप फरमावो तो हुं आखा गुजरातने जमाडीश. शासनदेव मने अेमां सहाय करशे. अत्यारे ज मारुं आपने आमंत्रण छे."

संघपतिनो उत्तर सांभळी गुर्जेश्वर पहेलां तो डघाई ज गया, पछी थोडीवारे बोल्या: झांझणकुमार, आखुं गुजरात अेटले शुं अेनो कंइ ख्याल तमे करी शको छे? तमे अेने जमाडवानुं कहो छो?"

"राजन! सघळो ज ख्याल करी शकुं छुं अने आजे, आ घडीओ ज, आपने समस्त गुजरातने मारा तरफथी जमवानुं आमंत्रण पाठववा विनंती करू छुं."

राजवी मों मां आंगळां नाखी गया के आ संघपति आ शुं बोले छे! पण चालो, कसोटी थशे, ओम समजी तेमणे मन मनाव्युं.

राज्य वात्सल्य।

आम वातवातमां प्रसंगे ओक जुदुं ज रुप धारण करी लीधुं. झांझणकुमारना संघनुं प्रयाण बंध रह्युं. आखो संघ कर्णावतीनी बहार रोकाई गयो. आखी गुजरातनी प्रजाने झांझणकुमारना राज्य-वात्सल्यमां जमवानां आमंत्रणो मोकलाई गयां.

भगवान जिनेन्द्रनुं शासन जेणे रग रगमां पचाव्युं होय छे एवा धर्मशूर आत्माने, प्रसंग आवे त्यारे, वट केवी रीते राखवो ते शीखववानुं न होय. हवे तो संघवात्सल्य के सहधर्मीवात्सल्य नहीं. पण राज्यवात्सल्यना महाजमणने हर्ष अने उल्लासपूर्वक सफळ कर्ये ज छूटको हतो. अने झांझणकुमार एमां जराय पाछा पडे एवा न हता. एमनी शक्ति अने भक्ति बन्ने अजोड हती.

काम न कल्पी शकाय एवुं मोटुं हतुं अने घणी झडपे पुरुं करवानुं हतुं. पण एनी पाछळ प्रतापी पिताना पुत्रनी व्यवहारदक्ष वणिक् बुद्धि काम करती हती. संघमांना भावनाशील अग्रणीओनो अने कुशळ कार्यकरोनो उमंगभर्यो साथ हतो, अने पैसानी तो कोई कमी ज न हती, एटले कामनी

सफळतामां कोई संदेह न हतो.

रसोईनी अने जमाडवानी तावडतोब तैयारीओ करवामां आवी. एकीसाथे पांचसो माणसोने जमवा बेसाडी शकाय एवा विशाळ एक सो जेटला मंडपो खडा करवामां आव्या. साबरमतीनो आखो किनारो अने कर्णावतीनी आसपासनो वेरान लागतो वन-प्रदेश जाणे वन-भोजननुं भर्युं भर्युं रळियामणुं उद्यान बनी गयो. जमनारने बहुमान पूर्वक जमाडी शकाय एवी बेसवा-पीरसवानी पूरी व्यवस्था करवामां आवी.

बधी पूर्व तैयारी पूरी थई एटले निश्चित दिवसथी राज्यवात्सल्य अथवा तो प्रजावात्सल्यनो महाजमणवार शरु थयो. कर्णावतीना राजवी अने नगरजनो पण आ काममां पूरा उत्साहथी साथ आपवा आवी पहोंच्या. राजा सारंगदेवनो रोष पण उतरी गयो हतो. आ कार्यने एमणे पोतानुं ज मानी लीधुं. राज्यनी मददथी ज्ञातिवार जुदा जुदा मंडपोमां प्रजाजनोने भावपूर्वक जमाडवामां आवता, दिवसभर ए काम चाल्या करतुं.

जाणे झांझणकुमारे राज्यवात्सल्य के प्रजवात्सल्यनो साप्ताह्निक महोत्सव मांडयो होय एम सात सात दिवस सुधी आ जमणवार चाल्यो. अने समग्र गुजरातनी प्रजाए मांडवगढना स्वर्गस्थ महामंत्रीना सुपुत्र झांझणकुमारनी महेमानगतिनो अनेरो लाभ लीधो अने एमनी धर्मभक्ति,

कार्यशक्ति अने उदारतानां दर्शन कर्या.

बराबर सातमा दिवसनी संध्याए समस्त गुजरात जमी रहयुं त्यारे हर्षथी छलकती आंखे राजा सारंगदेव संघपति झांझणकुमार पासे आवी पहोंच्या अने गदगद वाणीथी बोल्या. "श्रेष्ठीवर ! तमे न कल्पीशकाय के नजरे जोयुं न होय तो न मानी शकाय एवुं अति अदभुत कार्य करी बताव्युं ! तमने समजवामां में खरेखर भूल करी ! मने माफ करो. तमारामां जे शक्ति छे ते मारामां नथी. तमे तो चमत्कार करी बताव्यो अमे ए क्यारे य नहीं भूल शकीए."

राज्य वात्सल्य ।

झांझणकुमारे विनम्रवनीने कहयुंः "महाराजा ! आ कोई मारी शक्ति नथी, आ तो मारा अभीष्टदेव भगवान जिनेन्द्रदेवे दर्शावेल दानधर्मनी शक्ति छे. बधो ज यश ऐ महाप्रतापी इष्टदेवने अने ऐमणे प्ररुपेल सर्वकल्याणकारी धर्मने घटे छे. हुं तो मात्र एमना चरणनी रज छु."

राजवीए पूछ्युं.ः "झांझणकुमार, आ जमण माटे तमे केटली मीठाई बनावरावेली ?"

"राजेश्वर ! मीठाइघर जोवा पधारो" अने झांझणकुमार राजा सारंगदेवने ते तरफ दोरी गया.

त्यां राजवीए शुं जोय ? हजी बीजा हजारो माणसो जमी शके एटली ताजी मीठाईना गंज खडकाया हता. राजवी आ दानेश्वरीने मनोमन वंदी रहया अने लागणीभर्या स्वरे बोल्याः

राज्य वात्सल्य ।

"संघपतिजी, मागो, मागो, मागो ते आपुं." तमारा आ कृत्यथी हुं अति प्रसन्न थयो छुं.
"झांझणकुमारे कह्युंः राजन! आप जेवा राजवीओना रूडा प्रतापे तो अमे सिद्धक्षेत्रनी यात्रा करी आव्या, आथी विशेष अमारे शुं जोइए !"

गुर्जरेश्वर बोल्याः "श्रेष्ठी, एम न चाले. जे मन थाय ते मागो, आजे तो मारी भावनाने पोताना मार्गे विहरवा द्यो."

खूब विचार करी संघपतिए कह्युंः "राजन्? मारे मागवानुं तो कंइ छे नहीं, पण जो तमारे आपवुं ज होय तो एक ज वस्तु मागुं छुं अने ते ए के आपनी केदमां पडेला समस्त राजाओने मुक्त करो."

गुर्जरेश्वरने थयुं के मंत्रीश्वरे मागवामां कशी ज कचाश राखी नथी घणुं घणुं मांग्यु छे, पण गुर्जरेश्वर प्रतिज्ञाबद्ध हता.

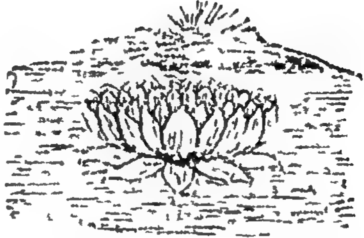
बीजा दिवसना प्रभाते बधाय राजाओने मुक्त करवामां आव्या अने तेमना मुक्तिदाता मांडव-गढना श्रेष्ठी झांझणकुमार छे ते अेमने जणाववामां आव्युं.

हर्षथी छलकातां नेत्रो द्वारा बीजानां नेत्रोने पण सजळ बनावतुं अे राजवीवृंद ज्यारे झांझणकुमारनां तंबुमां आवी अेमनो उपकार मानवा लाग्युं त्यारे तो अंतरने गदगद बनावी दे अेवु द्दश्य खडुं थयुं.

सौअे भगवान वर्धमानस्वामीनी महाकरुणानो अने अेमना शासननो जयजयकार बोलावी दीधो.

बीजा दिवसे सवारे आ महाकाय संघे कर्णावतीथी आगळ प्रयाण आदर्युं त्यारे पाछळ उभेलुं राजवीवृंद अने गुर्जरेश्वर सारंगदेव समेत समस्त नगरजनोनां हृदयमां भगवान जिनेन्द्रना शासननी अद्भुतता अंकाई चूकी हती. झांझणकुमारे अे सौने जाणे वश करी लीधा हता.

राज्य वात्सल्य।



श्रावक धर्म विंशिका



धम्मोवग्गहदाणाइसंगओ सावगो परो होइ। भावेण सुद्धचित्तो निच्चं जिणवयणसवणरई ॥१॥
मग्गणुसारी सड्ढो पन्नवणिज्जो कियापरो चेव। गुणरागी सक्कारंभसंगओ देसचारित्ती ॥२॥
पंच य अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं च हुंति तिन्नेव। सिक्खावयाइं चउरो सावगधम्मो दुवालसहा ॥३॥
एसो य सुप्पसिद्धो सहाइयारेहिं इत्थ तंतम्मि। कुसलपरिणामरूवो नवरं सइ अंतरो नेओ ॥४॥
सम्मा पलियपुहुत्तेऽवगए कम्माण एस होइत्ति। सोऽवि खलु अवगमो इह विहिगहणाईहिं होइ जहा ॥५॥
गुरुमूले सुयधम्मो संविग्गो इत्तरं व इयरं वा। गिण्हइ वयाइं कोई पालइ य तहा निरइयारं ॥६॥
एसो ठिइओ इत्थं न उ गहणादेव जायई नियमा। गहणोवरिंपि जायइ जाओऽवि कम्मुदया अवेइ ॥७॥
तित्थंकरभत्तीए सुसाहुजणपज्जुवासणाए य। उत्तरगुणसद्धाए इत्थ सया होइ जइयव्वं ॥८॥
तम्हा निच्चसईए बहुमाणेणं च अहिगयगुणंभि। पडिवक्खदुगुंछाए परिणइयालोयणेणं च ॥९॥
एवमसंतोऽवि इमो जायइ जाओऽवि न पडइ कयाइ। ता इत्थं बुद्धिमया अपमाओ होइ कायव्वो ॥१०॥

निवसिज्ज तत्थ सड्ढो साहूणं जत्थ होइ संपाओ । चेइयधरा उ जहियं तदन्नसाहम्मिया चेव ॥११॥
नवकारेण विबोहो अणुसरणं सावओ वयाइं मे । जोगो चिइवंदणमो पच्चक्खाणं तु विहिपुव्वं ॥१२॥
तह चेईहरगमणं सक्कारो वंदणं गुरुसगासे । पच्चक्खाणं सवणं जइपुच्छा उचियकरणिज्जं ॥१३॥
अविरुद्धो ववहारो काले विहिभोयणं च संवरणं । चेइहरागमसवणं सक्कारे वंदणाई य ॥१४॥
जइविस्सामणमुचिओ जोगो नवकारचिंतणाईओ । गिहिगमणं विहिसुवणं सरणं गुरुदेवयाईणं ॥१५॥
अब्बंभे पुण विरई मोहदुगुंछा सतत्तचिंता य । इत्थीकलेवराणं तव्विरएसुं च बहुमाणो ॥१६॥
सुत्तविउद्धस्स पुणो सुहुमपयत्थेसु चित्तविन्नासो । भवठिइनिरूवणे या अहिगरणोवसमचित्ते वा ॥१७॥
आउयपरिहाणीए असमंजसचिट्ठियाण व विवागे । खणलाभदीवणाए धम्मगुणेसुं च विविहेसु ॥१८॥
बाहगदोसविवक्खे धम्मायरिए य उज्जुयविहारे । एमाइ चित्तनासो संवेगरसायणं देयं ॥१९॥
गोसे भणिओ य विही इय अणवरयं तु चिट्ठमाणस्स । पडिमाकमेण जायइ संपुन्नो चरणपरिणामो ॥२०॥

याकिनीमहत्तरासूनु
विद्वत्प्रकाण्ड श्रीहरिभद्रसूरीश्वरविरचित विंशतिविंशिकागता
नवमी श्रावक धर्मविंशिका ॥



॥ समाप्तोऽयं पञ्चपारिशिष्टालङ्कृतः
सुकृतसागर नामा ग्रन्थः ॥

